62

…ास्य द्वितीयं तन्त्रम्-

…-सम्प्राप्तिः

टीकाकारः-

श्रीसरयूप्रसादशास्त्री "द्विजेन्द्रः"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

❀ ॐ ❀

श्रीविष्णुशर्म-सङ्कलितम्-

पञ्चतन्त्रम्

तस्य चेदं

'बालबोधिनी' भाषा-टीकालङ्कृता

मित्रसम्प्राप्ति-

नामद्वितीयं तन्त्रम् ।

टीकाकारः सम्पादकश्च

"कविताकलानिधिः, साहित्यालङ्कारः"

पं० श्रीसरयूप्रसादशास्त्री 'द्विजेन्द्रः'

"साहित्यायुर्वेदशास्त्री, काव्यतीर्थः, साहित्यरत्नम्"

तच्च काश्याम्

फर्म—'श्रीबैजनाथप्रसादबुकसेलरेण'

स्वकीये 'श्री विश्वेश्वर-यन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

द्वितीयावृत्तिः] दीपावल्यां सं०२००८ वि० | मूल्य रु० १'५०.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुभ-सन्देश !

पढ़कर इसे नर विज्ञ होवें, नीति-निपुण, सुखी महा।
कल-कीर्ति पावें लोक में, धन-धान्य-सुत पाकर अहा ! ॥
श्री 'विष्णुशर्मा'के बनाये, 'पञ्चतन्त्र' जहाज से।
होवें "द्विजेन्द्र" सुनीति-सागर पार निश्चय आज से ॥

—श्रीसरयूप्रसादशास्त्री 'द्विजेन्द्र'

'मन्त्र-महौषध-मन्दिर'

भेलूपुर, काशी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नम्र-निवेदन !

सहृदय सज्जनो !

आप लोगोंको यह विदित ही है कि मनुष्य-मात्र विशेषतः परीक्षार्थि विद्यार्थियोंके लिये 'पञ्चतन्त्र' कितने बड़े उपकारकी पुस्तक है। इसमें अतीत कालसे लेकर वर्तमान युगके प्रायः सभी प्रकारकी राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक शिक्षाओंका संग्रह है, जो अर्थनीति एवं कौटिल्यशास्त्र की तो यह एकमात्र कुञ्जी ही है। इस ग्रन्थमें मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षितकारक नामक पाँच तंत्र हैं। अभी तक पृथक् २ ये तंत्र मूलमात्र छपे हैं।

पञ्चतंत्र का अनुवाद अरबी, फारसी, ग्रीक, सीरियन, स्पेन, हिब्रू, लैटिन, अंग्रेजी और जर्मनी—आदि अनेक विदेशीय भाषाओंमें तथा हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, उर्दू-आदि भारतीय प्रायः सभी प्रान्तीय भाषाओंमें हो चुका है। यही इस ग्रन्थकी महत्ताका द्योतक है। यद्यपि हिन्दीमें भी इस पर अनेक टीकाएँ हैं, फिर भी विद्यार्थियोंको सन्तोष नहीं। वे अब कुछ नवीनता चाहते हैं, उनके लिये भाषा भी सरस, सरल एवं सामयिक होनी चाहिए। इसी अभावकी पूर्तिके लिये मैंने पञ्चतंत्रका यह शुद्ध संस्करण "बालबोधिनी" भाषाटीका-सहित प्रकाशित किया है; क्योंकि संस्कृतकी प्रथमा एवं मध्यमा परीक्षामें यह सम्पूर्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्रन्थ पाठ्य-पुस्तकके रूपमें निर्धारित है। अनेक विश्वविद्यालयों ने भी इसके विभिन्न भागोंको अपने यहाँ पाठ्य-ग्रन्थ में रखा है।

बड़े हर्षकी बात है कि स्थानीय हिन्दूविश्वविद्यालयने भी अपनी ऐडमिशन–परीक्षामें पंचतन्त्रके द्वितीय तंत्र "मित्र–सम्प्राति" को संस्कृत विषयका पाठ्य-ग्रन्थ निर्वाचित किया है। इसलिये आज विद्यार्थियोंके सामने इसकी भाषा-टीका लेकर मैं उपस्थित हुआ हूँ।

इसके टीकाकार हैं हिन्दी तथा संस्कृत-साहित्यके सुपरिचित विद्वान् अनेक ग्रन्थके रचयिता कविवर श्री "द्विजेन्द्र" जी। आप स्थानीय सेण्ट्रल-हिन्दू-स्कूलमें संस्कृत एवं हिन्दीके एक अनुभवी अध्यापक हैं। आपने यथास्थान उपयुक्त टिप्पणियोंसे इसको और भी छात्रोपयोगी बना दिया है। परीक्षार्थियोंकी सुविधाके लिये इस ग्रन्थ का मूल्य १) केवल लागतमात्र ही रखा गया है। अतः मैं आशा करता हूँ कि विद्यार्थिवृन्द इसे अवश्य अपनाकर लाभ उठायेंगे।

राजादरवाजा
काशी
२०–६–५१ ई०

विनीत प्रार्थी—
गोपाल दास
(प्रकाशक)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

❀ श्रीः ❀

अथ पञ्चतन्त्रस्य द्वितीय-तन्त्रम्

मित्रसम्प्राप्तिः ।

(मङ्गलाचरणम्)

श्रीगुरु-पद-पंकज विमल, वन्दि 'द्विजेन्द्र' अबोध ।
"बालबोधिनी" बाल–हित, टीका रचे सुबोध ॥

द्वितिये[1] 'मित्र-सम्प्राप्ति' यह, 'पञ्चपन्त्र' का ज्ञान ।
जिसमें स-रस[2] कथा सुरस, पढ़ें सदैव सुजान ॥

अथेदमारभ्यते मित्रसम्प्राप्तिर्नाम[3] द्वितीयं तन्त्रम् । यस्यायमादिमः श्लोकः—

अब 'मित्रसम्प्राप्ति' नामका द्वितीय तंत्र प्रारम्भ किया जाता है । जिसका यह पहला श्लोक है—

असाधना अपि प्राज्ञा बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ।
साधयन्त्याशु कार्याणि काकाखुमृगकूर्मवत् ॥१॥

बुद्धिमान्, बहुश्रुत एवं पण्डितजन साधनहीन होते हुए भी कौए, चूहे, मृग और कछुए की तरह अपने कार्यों को शीघ्रही सिद्ध कर लेते हैं ॥ १ ॥

१–द्वितीय इति शुद्ध पाठः । २–षट् (छः) रसयुक्त या ६ कथाएँ ।

३—मित्रस्य सम्प्राप्तिर्यत्र तत्तथोक्तं सुहृन्मिलनसाधनमित्यर्थः । तन्नामकमिदं द्वितीयं तंत्रं (अध्यायः परिच्छेदो वा) प्रारभ्यते मया विष्णुशर्मणा इति शेषः । (द्विजेन्द्रस्य)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तद्यथानुश्रूयते-'अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरम् । तस्य नातिदूरस्थो महोच्छ्रायवान् नानाविहंगोपभुक्तफलः कीटैरावृत-कोटरश्छायाऽऽश्वासितपथिकजनसमूहो न्यग्रोध पादपो महान् । अथवा युक्तम्—

वह इस प्रकार सुना जाता है—'दक्षिण देशमें 'महिला-रोप्य, नामका एक नगर है। उसके समीप ही अनेक प्रकारके पक्षियोंसे उपभुक्त फलवाला, कीड़ोंसे युक्त खोखलेवाला एवं छायासे यात्रियोंके समूहको विश्राम देनेवाला एक बड़ा भारी बरगदका पेड़ है। अथवा ठीक ही है—

छायासुप्तमृगः शकुन्तनिवहैर्विष्वग्विलुप्तच्छदः
कीटैरावृतकोटरः कपिकुलैः स्कन्धे कृतप्रश्रयः ।
विश्रब्धं मधुपैर्निपीतकुसुमः श्लाघ्यः स एव द्रुमः
सर्वाङ्गैर्बहुसत्त्वसङ्गसुखदो भूभारभूतोऽपरः ॥२॥

जिस वटवृक्षकी घनी छायामें मृगादि पशुगण सोते हैं, जिसके पत्ते चारों ओर पक्षि समूहोंसे ढँके हैं, जिसके छिद्र (खोखले) कीड़ोंसे भरे हैं, जिसकी शाखाओंपर वन्दरोंके यूथ विश्राम करते हैं, निडर होकर भ्रमरवृन्द जिसके पुष्प-परागको सदैव पीते हैं तथा जो अपने सभी अङ्गोंसे अनेक जीवोंको सब प्रकारका सुख देता है, वही वृक्ष सराहनीय है, और वृक्ष तो केवल भूतलपर भार (बोझ) के समान हैं। अर्थात् जो समस्त जीवोंके उपकारमें आवे, वही धन्य है ॥ २ ॥ यह * 'शार्दूलविक्रीडित'' छन्द है।

*"सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।" (छं० मं०)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्र च लघुपतनको नाम वायसः प्रतिवसति स्म । स कदाचित्प्राणयात्रार्थं पुरमुद्दिश्य प्रचलितो यावत्पश्यति, तावज्जालहस्तोऽतिकृष्णतनुःस्फुटितचरण ऊर्ध्वकेशो यमकिङ्कराकारो नरः सम्मुखो बभूव ।

उस महान् वृक्षपर 'लघुपतनक' नामका एक कौआ रहता था । वह किसी समय चारा (आहार) के लिये नगरकी ओर ज्योंही चला, त्योंही क्या देखता है कि हाथमें जाल लिये, अत्यन्त काले शरीरका, फटे चरणवाला, सिरके बाल खड़े किये हुए, यमदूतके समान एक मनुष्य सामने आ पड़ा ।

अथ तं दृष्ट्वा शङ्कितमना व्यचिन्तयत्—'यदयं दुरात्माऽद्य ममाश्रयवटपादपसम्मुखोऽभ्येति । तन्न ज्ञायते, किमद्य वटवासिनां विहङ्गमानां संक्षयो भविष्यति न वा ? ।'

तब उसे देख, भयभीत होकर वह मनही मन सोचने लगा कि "यह नीच पुरुष आज मेरे आश्रयभूत वटवृक्षकी ओर ही आ रहा है, अतः यह नहीं मालूम कि बरगदपर रहनेवाले पक्षियोंका आज सर्वनाश होगा या नहीं ?"

एवं बहुविधं विचिन्त्य तत्क्षणान्निवृत्य तमेव वटपादपं गत्वा सर्वान्विहङ्गमान्प्रोवाच—'भोः, अयं दुरात्मा लुब्धको जालतण्डुलहस्तः समभ्येति । तत्सर्वथा तस्य न विश्वसनीयम् । एष जालं प्रसार्य तण्डुलान्प्रक्षेप्स्यति । ते तण्डुला भवद्भिः सर्वैरपि कालकूटसदृशा द्रष्टव्याः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार बहुत तरह से सोच-समझकर उसने तत्काल ही लौट, वटवृक्ष पर जाकरके सब पक्षियोंसे कहा—'अरे पक्षियो ! यह नीच बहेलिया हाथमें जाल और चावल लिये आ रहा है। इसलिये उसका कभी विश्वास न करना। जब वह जाल बिछा-कर चावल छींट देगा, तब उस चावलके दानेको आपलोग विष-तुल्य समझिये।'

एवं वदतस्तस्य स लुब्धकस्तत्र वटतले आगत्य जालं प्रसार्य सिन्दुवारसदृशांस्तण्डुलान्प्रक्षिप्य नातिदूरं गत्वा निभृतःस्थितः। अथ ये पक्षिणस्तत्र स्थितास्ते लघुपतनकवाक्यार्गलया निवारितास्तां-स्तण्डुलान् हालाहलाङ्कुरानिव वीक्षमाणा निभृ-तास्तस्थुः।

इस प्रकार वह कह ही रहा था, कि लोभी व्याधा आ पहुँचा और बरगदके नीचे जाल बिछाकर सफेद फूलके समान चावलके दानोंको छींट, वह स्वयं थोड़ी दूर पर जा, एकान्तमें छिपकर बैठ गया। इसके बाद वहाँ जितने पक्षी थे, वे सभी लघुपतनकके वचन रूपी कील (डण्डा) से निरुद्ध होकर उन चावलोंको विषवृक्षके अंकुरके सदृश समझते हुए एकान्तमें जा छिपे।

१—'निसिन्दा' नामक वृक्षका फूल चावल के समान श्वेत होता है। उसीको सिन्दुवारम्' संस्कृत में कहते हैं। कहा भी है—"मुक्ताकलापीकृत-सिन्दुवारम्।" २—कील (किली) से। ३—"विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्" इस वचन प्रमाणसे विषका वृक्षत्व सिद्ध होता है। अतः उसका अंकुरित होना भी स्वाभाविक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्रान्तरे चित्रग्रीवो नाम कपोतराजः सहस्र-परिवारः प्राणयात्रार्थं परिभ्रमंस्तांस्तण्डुलान्दूर-तोऽपि पश्यँल्लघुपतनकेन निवार्यमाणोऽपि जिह्वा-लौल्याद्भक्षणार्थमपतत्, सपरिवारो निबद्धश्च । अथवा साध्विदमुच्यते—

इसी बीच 'चित्रग्रीव' नामक कबूतरोंका राजा, सहस्रों कबूतरोंको साथ ले, आहार (चारा) के लिये घूमता हुआ दूर ही से उन तण्डुल-कणों (चावलके दानों) को देखकर, लुब्ध हो गया । यद्यपि 'लघुपतनक'ने भी उसे खूब समझाया और रोका, तथापि वह लोभवश खाने के लिये नीचे उतरा और परि-वार-सहित उस जालमें फँस गया । किसीने ठीक कहा है:—

जिह्वालौल्यप्रसक्तानां जलमध्यनिवासिनाम् ।
अचिन्तितो वधोऽज्ञानां मीनानामिव जायते ॥३॥

पानीमें रहनेवाली मछलीकी तरह जीभके लालचमें पड़कर आसक्त रहनेवाले मूर्खों की मृत्यु यों ही अचानक हो जाती है॥३॥

अथवा दैवप्रतिकूलतया भवत्येवम् । न तस्य दोषोऽस्ति । उक्तञ्च

अथवा अभाग्य वश ऐसा होता ही है, इसमें उसका दोष नहीं है । कहा भी है:—

पौलस्त्यः कथमन्यदारहरणे दोषं न विज्ञातवान्
रामेणापि कथं न हेमहरिणस्याऽसम्भवो लक्षितः ?
अक्षैश्चापि युधिष्ठिरेण सहसा प्राप्तो ह्यनर्थः कथं ?
प्रत्यासन्नविपत्तिमूढमनसां-प्रायो मतिः क्षीयते ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्या रावणने दूसरेकी स्त्री चुरानेमें दोष नहीं जाना था? क्या रामने सुवर्ण-मृगका होना असम्भव नहीं समझा? धर्मराज युधिष्ठिर भी एकाएक जुएके अनर्थमें कैसे फँस गये? (इन सबोंका उत्तर यही है कि) प्रायः विपत्ति पड़ने पर लोगों का मन मूढ़ (किंकर्त्तव्य-विमूढ़) हो जाता है और बुद्धि नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥ शार्दूलविक्रीडित वृत्त है ।

तथा च । और भी—

कृतान्तपाशबद्धानां दैवोपहतचेतसाम् ।
बुद्धयः कुब्जगामिन्यो भवन्ति महतामपि ॥ ५ ॥

यमराजके जालमें बँधे हुए तथा दैवयोगसे भ्रष्ट-बुद्धिवाले बड़ेसे बड़े आदमियोंकी बुद्धि भी उलटी हो जाती है ॥ ५ ॥

अत्रान्तरे लुब्धकस्तान्बद्धान्विज्ञाय प्रहृष्टमनाः प्रोद्यतयष्टिस्तद्वधार्थं प्रधावितः । चित्रग्रीवोऽप्यात्मानं सपरिवारं बद्धं मत्वा लुब्धकमायान्तं दृष्ट्वा तान्कपोतानूचे—'अहो! न भेतव्यम् । उक्तञ्च—

इसके बाद बहेलियेने जब जान लिया कि कबूतर फँस गये हैं, तो प्रसन्न मनसे लाठी उठाकर उन्हें मारनेके लिये दौड़ा। चित्रग्रीवने भी सपरिवार अपनेको बंधनमें समझकर जब व्याधाको अपनी ओर आते देखा, तब कबूतरोंसे कहा- 'अरे! डरना नहीं चाहिये । कहा भी है:—

व्यसनेष्वेव सर्वेषु यस्य बुद्धिर्न हीयते ।
स तेषां पारमभ्येति तत्प्रभावादसंशयम् ॥ ६ ॥

सब प्रकारकी विपत्तियोंके आने पर भी जिसकी बुद्धि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षीण नहीं होती, वह उस बुद्धिके प्रभावसे उन विपत्तियोंसे पार हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं ॥ ६ ॥

यतः । क्योंकि—

सम्पत्तौ च[1] विपत्तौ च महतामेकरूपता ।
उदये[2] सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा ॥ ७ ॥

जो लोग महान् पुरुष होते हैं, वे सम्पत्ति और विपत्ति दोनोंमें एक समान ही रहा करते हैं। जैसे सूर्य भगवान् उदय और अस्त दोनों समयमें लाल ही रहते हैं[3] ॥ ७ ॥

तस्स वै वयं हेलयोड्डीय सपाशजाला अस्यादर्शनं गत्वा मुक्तिं प्राप्नुमः । नो चेद्भयविक्लवाः सन्तो हेलया सम्मुत्पातं न करिष्यथ ततो मृत्युमवाप्स्यथ । उक्तञ्च—

इसलिये हमलोग एक साथ ही जाल-सहित उड़कर इसकी आँखोंसे ओझल हो जाँय और विपत्तिसे छुटकारा पा लें। यदि तुमलोग भयसे व्याकुल होकर उड़ोगे नहीं, तो मर जाओगे। कहा भी है—

तनवोऽप्यायता नित्यं तन्तवो बहुलाः समाः ।
बहून्बहुत्वादायासान्सहन्तीत्युपमा सताम्' ॥८॥

१—'च' इत्यस्यस्थाने 'हि' इति साधु पाठः।

२—उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च' इति पाठान्तरं पूर्वार्द्धे क्वचिदुपलभ्यते ।

३—उगत लाल रवि रहतु है, अथवत लाल मुगाढ़ ।
त्यों 'द्विजेन्द्र' बड़ लोगहू, सुख-दुख में सम ठाढ़ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लम्बे किन्तु महीन धागे जब बहुतसे एकत्र हो जाते हैं, तब अपनी बहुलताके कारण वे बहुत काम भी करते हैं। यही उपमा सत्पुरुषोंके लिये भी लागू है ॥ ८ ॥

तथानुष्ठिते लुब्धको जालमादायाकाशे गच्छतां तेषां पृष्ठतो भूमिस्थोऽपि पर्यधावत्। तत ऊर्ध्वाननः श्लोकमेनमपठत्—

उन कबूतरोंके ऐसा करनेपर बहेलिया, जाल लेकर आकाशमें उड़ते हुए उन्हें देख, पृथ्वी पर रहता हुआ भी उनके पीछे २ दौड़ा और ऊपर मुँह करके उसने यह श्लोक पढ़ा—

जालमादाय गच्छन्ति संहताः पक्षिणोऽप्यमी ।
यावच्च विवदिष्यन्ते पतिष्यन्ति न संशयः ॥ ९ ॥

एकमें मिलकर ये पक्षी मेरे जालको लिए, उड़े जा रहे हैं, पर ज्योंही ये आपसमें विवाद करने लगेंगे, त्योंही गिर पड़ेंगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥

लघुपतनकोऽपि प्राणयात्राक्रियां त्यक्त्वा किमत्र भविष्यतीति कुतूहलात्तत्पृष्ठतोऽनुसरति। अथ दृष्टेरगोचरतां गतान् विज्ञाय लुब्धको निराशः श्लोकमपठन्निवृत्तश्च ।

लघुपतनक भी रोजीका काम छोड़ 'यहाँ क्या होगा' यह सोचकर उनके पीछे २ चलने लगा। फिर जब वे कबूतर आँखसे ओझल हो गये, तब बहेलिया निराश होगया और यह श्लोक पढ़ता हुआ लौट पड़ा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति यस्य हि भवितव्यता नास्ति॥

जो नहीं होने वाला है, वह नहीं होता और जो होने वाला है, वह विना कोई यत्न किये भी हो जाता है; क्योंकि जिसकी भवितव्यता (होनी) नहीं होती, वह वस्तु हथेली में आकर भी नष्ट हो जाती है ॥ १० ॥ यह 'आर्यावृत्त' है ।

तथा च । और भी—

पराङ्मुखे विधौ चेत्स्यात्कथञ्चिद् द्रविणोदयः ।
तत्सोऽन्यदपि संगृह्य याति शंखनिधिर्यथा ॥ ११ ॥

दैवके विपरीत रहनेपर यदि धनका लाभ भी हो जाता है, तो वह 'शंखनिधि' की तरह रही-सही पूँजीको भी लेकर चला जाता है ॥ ११ ॥

तदास्तां तावद्विहंगाऽऽमिषलोभो यावत्कुटुम्बवर्तनोपायभूतं जालमपि मे नष्टम् ।

अतः पक्षियोंके मांस पानेकी बात तो दूर रही, बाल-बच्चोंके पालन-पोषण करनेका एकमात्र सहायक वह मेरा जाल भी नष्ट हो गया !

चित्रग्रीवोऽपि लुब्धकमदर्शनीभूतं ज्ञात्वा तानुवाच-'भोः, निवृत्तः स दुरात्मा लुब्धकः । तत्सर्वैरपि स्वस्थैर्गम्यतां महिलारोप्यस्य प्रागुत्तरदिग्भागे । तत्र मम सुहृद्धिरण्यको नाम मूषकः सर्वेषां पाशच्छेदं करिष्यति । उक्तञ्च—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित्रग्रीव भी व्याधाको छिपा हुआ जानकर अपने साथियों से कहने लगा—'वह दुष्ट बहेलिया लौट गया। अब सब कोई सावधानीके साथ 'महिलारोप्य' नगरके पूर्व और उत्तर भाग (ईशानकोण) में चलो। वहाँ मेरा मित्र 'हिरण्यक' नामका मूस (चूहा) रहता है। वह सबके बन्धनों को काटेगा। कहा भी है—

सर्वेषामेव मर्त्यानां व्यसने समुपस्थिते।
वाङ्मात्रेणापि साहाय्यं मित्रादन्यो न सन्दधे'।१२।

संसारके सब प्राणियोंको, किसी प्रकारकी विपत्ति उपस्थित होनेपर, केवल मित्रही (और नहीं) तो वचन द्वारा भी सहायता पहुँचाता है।॥ १२॥

एवं ते कपोताश्चित्रग्रीवेण सम्बोधिता महिलारोप्ये नगरे हिरण्यकबिलदुर्गं प्रापुः। हिरण्यकोऽपि सहस्रबिलदुर्गं प्रविष्टः सन्नकुतोभयः सुखेनास्ते। अथवा साध्विदमुच्यते—

इस प्रकार चित्रग्रीवके समझानेपर वे सब कबूतर उड़ते हुए, हिरण्यकके बिलके पास पहुँचे। उधर हिरण्यक भी हजारों मुखवाले बिल रूपी किलामें प्रवेश करके निडर हो, सुखपूर्वक रहता था। अथवा किसीने यह ठीक ही कहा है:—

अनागतं भयं दृष्ट्वा नीतिशास्त्रविशारदः।
अवसन्मूषकस्तत्र कृत्वा शतमुखं बिलम् ॥१३॥

१—इस प्रसंग में 'सहस्र' एवं 'शत' शब्द दोनों ही बहुसंख्या के द्योतक हैं, न कि पूर्ण संख्यावाची! (द्विजेन्द्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नीतिशास्त्रमें निपुण वह चूहा भयके उपस्थित न होनेपर भी सैकड़ों मुखवाला बिल बनाकर रहता था ॥ १३ ॥

दंष्ट्राविरहितः सर्पो मदहीनो यथा गजः ।
सर्वेषां जायते वश्यो दुर्गहीनस्तथा नृपः ॥ १४ ॥

जैसे बिना दाँतका साँप और मदरहित हाथी सब लोगोंके वशमें हो जाता है, वैसे ही बिना किलेवाला राजा साधारणसे भी साधारण शत्रुके वशमें हो जाता है ॥ १४ ॥

तथा च । और भी—

न गजानां सहस्रेण न च लक्षेण वाजिनाम् ।
तत्कर्म सिध्यते राज्ञां दुर्गेणैकेन यद्रणे ॥ १५ ॥

संग्राममें हजारों हाथियों और लाखों घोड़ोंसे भी राजाओं का वह काम नहीं सिद्ध हो सकता, जो केवल एक दुर्ग (किला) से हो जाता है ॥ १५ ॥

शतमेकोऽपि सन्धत्ते प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
तस्माद् दुर्गं प्रशंसन्ति नीतिशास्त्रविदो जनाः॥१६॥

क्योंकि किलेमें बैठा हुआ केवल एक ही धनुर्धारी पुरुष सैकड़ों वीरोंका सामना कर लेता है । नीति-शास्त्रके ज्ञाता लोग इसीसे तो दुर्गकी प्रशंसा करते हैं ॥ १६ ॥

अथ चित्रग्रीवो बिलमासाद्य तारस्वरेण प्रोवाच— 'भो भो ! मित्र हिरण्यक !! सत्वरमागच्छ, महती मे व्यसनावस्था वर्तते'। तच्छ्रुत्वा हिरण्यकोऽपि बिलदुर्गान्तर्गतः सन्प्रोवाच—'भोः ! को भवान् ? किमर्थमायातः ? किं कारणम् ? कीदृक्ते व्यसनावस्थानम् ? तत्कथ्यताम्' इति ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसके अनन्तर चित्रग्रीवने बिलके सामने पहुँचकर ऊँचे स्वरसे कहा—"ऐ मित्र हिरण्यक ! जल्दी आओ। इस समय मुझपर बहुत बड़ा संकट है।" यह सुनकर हिरण्यक भी अपने बिल रूपी किलेके भीतरसे ही बोला—"अहो ! आप कौन हैं ? किसलिये आये हैं ? क्या प्रयोजन है ? और आपके ऊपर कौन-सी विपत्ति आई हुई है ? सो सब कहिये।"

तच्छ्रुत्वा चित्रग्रीव आह—भोः ! 'चित्रग्रीवो नाम कपोतराजोऽहं ते सुहृत्। तत्सत्वरमागच्छ गुरुतरं प्रयोजनमस्ति। तदाकर्ण्य पुलकिततनुः प्रहृष्टात्मा स्थिरमनास्त्वरमाणो निष्क्रान्तः। अथवा साध्विदमुच्यते—

यह सुनकर चित्रग्रीवने कहा—"भाई ! मैं आपका मित्र 'चित्रग्रीव' नामक कबूतर हूँ। अतः शीघ्र आओ, बहुत बड़ा काम है। यह सुन, पुलकित शरीर हो, प्रसन्न चित्तसे मन स्थिर करके वह जल्दीसे निकल आया। किसीने ठीक ही कहा है:—

सुहृदः स्नेहसम्पन्ना लोचनानन्ददायिनः।
गृहे गृहवतां नित्यमागच्छन्ति महात्मनाम् ॥१७॥

स्नेहयुक्त तथा नेत्रों को आनन्द देनेवाले अच्छे मित्र श्रेष्ठ पुरुष (सद्गृहस्थ) के यहाँ ही नित्य आते रहते हैं ॥ १७ ॥

आदित्यस्योदयं तात ! ताम्बूलं भारती कथा।
इष्टा भार्या सुमित्रं च अपूर्वाणि दिने दिने ॥१८॥

हे प्रिय मित्र ! सूर्यका उदय, ताम्बूल, महाभारतकी कथा, प्रियतमा स्त्री और अच्छे मित्र—ये प्रतिदिन अपूर्व (नये) ही बने रहते हैं ॥ १८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुहृदो भवने यस्य समागच्छन्ति नित्यशः ।
चित्ते च तस्य सौख्यस्य न किञ्चित्प्रतिमं सुखम् ॥

जिसके घर नित्य उसके मित्र आया करते हैं, उस सुखके बराबर उसके मनमें और कोई भी सुख नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

अथ चित्रग्रीवं सपरिवारं पाशबद्धमालोक्य हिरण्यकः सविषादमिदमाह—'भोः ! किमेतत् ?' स आह—'भोः, जानन्नपि किं पृच्छसि ?

उक्तञ्च यतः—

इसके बाद हिरण्यक परिवार समेत चित्रग्रीवको बँधा हुआ देखकर दुःखके साथ कहने लगा—हाय ! 'यह क्या हुआ ?' उसने कहा–'मित्र, जानते हुए भी क्या पूछ रहे हो ? क्योंकि कहा भी है—

यस्माच्च येन च यदा च यथा च यच्च
यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म ।
तस्माच्च तेन च तदा च तथा च तच्च
तावच्च तत्र च कृतान्तवशादुपैति ॥ २० ॥

जिसके कारण, जिसके द्वारा, जिस समयमें, जिस प्रकार, जिस स्थानपर और जितना किया हुआ अपना अच्छा या बुरा कर्म है, वह उसी कारण, उसीके द्वारा, उसी समयमें उसी प्रकार, उतना ही फल भाग्यवश प्राप्त हो जाया करता है ॥ २० ॥ यह 'वसन्ततिलका' छन्द है ।

तत्प्राप्तं मयैतद्बन्धनं जिह्वालौल्यात् । साम्प्रतं

१–'कृतान्तो यमदैवयोः' इत्यमरः ।
२–'ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' (छं० मं०)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वं सत्वरं पाशविमोक्षं कुरु ।' तदाकर्ण्य हिरण्यकः प्राह—

सो मैंने लोभवश यह बंधन रूपी फल पाया है। अब इस समय तुम शीघ्र ही मुझे जालके बंधनसे छुड़ा लो'। यह सुनकर हिरण्यकने कहा—

'अर्धार्धाद्योजनशतादामिषं वीक्षते खगः ।
सोऽपि पार्श्वस्थिते दैवाद्बन्धनं न च पश्यति ॥२१॥

जो पक्षी सौ (१००) के आधे (५०) का आधा अर्थात् पचीस (२५) योजनपर भी पड़े हुए मांसको देख लेता है, वही दुर्भाग्यवश निकटवर्ती पाश (जाल) को भी नहीं देख पाता ॥ २१ ॥

तथा च । और भी—

रविनिशाकरयोर्ग्रहपीडनं
गजभुजङ्गविहङ्गमबन्धनम् ।
मतिमतां च निरीक्ष्य दरिद्रतां
विधिरहो ! बलवानिति मे मतिः ॥२२॥

सूर्य और चन्द्रमाकी ग्रहण-कालीन पीड़ा, हाथी, सर्प तथा पक्षियोंका बन्धन एवं बुद्धिमान् मनुष्योंकी दरिद्रताको देखकर, मेरी तो यही धारणा (स्थिर हुई) है कि दैव (भाग्य) बड़ा बलवान् है ॥ २२ ॥ यह 'द्रुतविलम्बित' छन्द है ॥

तथा च । और भी—

१—दैवाधीनमिदं जगत् ।' २—इस द्रुतविलम्बित वृत्तमें १२ वर्ण होते हैं । यथा-'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ ।" (छं०मं०)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्योमैकान्तविहारिणोऽपिविहगाःसम्प्राप्नुवन्त्यापदं
बध्यन्ते निपुणैरगाधसलिलान्मीनाः समुद्रादपि ।
दुर्णीतं किमिहास्ति किञ्च सुकृतंकःस्थानलाभेगुणः
कालः सर्वजनान्प्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि ॥'

आकाशके एकान्त भागमें विचरनेवाले पक्षी भी आपत्ति के शिकार होते हैं, समुद्रके अगाध जलमें रहनेवाली मछलियाँ भी चतुर मलाहोंद्वारा जालमें फँसा ली जाती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि इस संसारमें क्या पाप है और क्या पुण्य है? अथवा स्थान-विशेषके लाभसे ही क्या लाभ या हानि है? क्योंकि काल अपना लम्बा हाथ फैलाकर, दूरसे ही सबको पकड़ लिया करता है ॥ २३ ॥ यह 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है ।

एवमुक्त्वा चित्रग्रीवस्य पाशं छेत्तुमुद्यतं स तमाह—'भद्र ! मा मैवं कुरु । प्रथमं मम भृत्यानां पाशच्छेदं कुरु । तदनु ममापि च ।'

इस प्रकार कहकर जब चित्रग्रीवका बन्धन काटनेको उद्यत हुआ तो चित्रग्रीव कहने लगा—"भाई ! ऐसा न करो । पहले मेरे सेवकोंके बन्धन-काट लो, तत्पश्चात् मेरा बन्धन काटना ।"

तच्छ्रुत्वा कुपितो हिरण्यकः प्राह—'भोः, ! न युक्तमुक्तं भवता । यतः स्वामिनोऽनन्तरं भृत्याः ।' स आह—'भद्र मा मैव वद । मदाश्रयाः सर्वे एते वराकाः । अपरं सकुटुम्बं परित्यज्य समागताः । तत्कथमेतावन्मात्रमपिसम्मानं न करोमि ?उक्तंश्च—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह सुनकर हिरण्यक कुपित हो गया और कहने लगा—"तुमने यह ठीक नहीं कहा, क्योंकि पहले स्वामी हैं, तब सेवक" उसने कहा—"नहीं, नहीं ऐसा मत कहो। ये सब बेचारे मेरे आधीन हैं। दूसरे अपने बाल-बच्चोंको छोड़कर मेरे साथ आये हैं। तो क्या मैं इनका इतना भी आदर न करूँ? कहा भी है—

यः सम्मानं सदा धत्ते भृत्यानां क्षितिपोऽधिकम्।
वित्ताभावेऽपि ते दृष्ट्वा ते त्यजन्ति न कर्हिचित्॥

जो राजा सदैव अपने सेवकोंका आदर करता है, उस राजाको वे सेवक धनका अभाव होनेपर भी कभी नहीं छोड़ते ॥ २४ ॥

तथा च। और भी—

विश्वासः सम्पदां मूलं तेन यूथपतिर्गजः।
सिंहो मृगाधिपत्येऽपि न मृगैः परिवार्यते ॥ २५ ॥

विश्वास सब सम्पत्तियों का मूल कारण है। उसी विश्वास के कारण हाथी 'यूथपति' कहलाता है। (इसीसे सब प्रकारके बनैले जीव-जन्तु उसके साथ रहते हैं; किन्तु सिंह मृगोंमें राजा होते हुए भी मृगोंसे आवेष्टित (घिरा) नहीं होता (अर्थात् कोई भी बन-पशु उसके पास नहीं रहना चाहता) ॥ २५ ॥

अपरं, मम कदाचित्पाशच्छेदं कुर्वतस्ते दन्तभङ्गो भवति। अथवा दुरात्मा लुब्धकः समभ्येति। तन्नूनं मम नरकपात एव। उक्तञ्च—

दूसरी बात यह है, यदि कदाचित् मेरे बन्धन काटते समय तुम्हारे दाँत टूट जाँय, या वह बहेलिया आ पहुँचे तो मुझे अवश्य ही नरक में जाना पड़ेगा। कहा भी है—

१—रक्षितं रक्षकं स्वयं सेवकाः स्युः सुरक्षिताः' इति कामन्दकीये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सदाचारेषु भृत्येषु संसीदत्सु च यः प्रभुः ।
सुखी स्यान्नरकं याति परत्रेह च सीदति ॥ २६॥

जो स्वामी (राजा) सदाचारी सेवकों के दुःखी रहने पर भी स्वयं सुखी रहता है, वह मरने पर नरक में जाता है और इस लोक में दुःखी रहता है ॥ २६ ॥

तच्छ्रुत्वा प्रहृष्टो हिरण्यकः प्राह—'भोः, वेद्म्यहं राजधर्मम् । परं मया तव परीक्षा कृता । तत्सर्वेषां पूर्वं पाशच्छेदं करिष्यामि । भवानप्यनेन विधिना बहुकपोतपरिवारो भविष्यति । उक्तञ्च—

यह सुनकर हिरण्यक प्रसन्न हुआ और कहने लगा—"मैं राजनीति जानता हूँ । यह तो मैंने तुम्हारी परीक्षा की थी । इसलिये पहले मैं सभी कबूतरोंका बन्धन काटूंगा । आप भी इस प्रकारसे अनेक कबूतरोंके परिवार वाले होंगे । कहा भी है—

'कारुण्यं संविभागश्च यस्य भृत्येषु सर्वदा ।
सम्भवेत्स महीपालस्त्रैलोक्यस्यापि रक्षणे' ॥२७॥

जो राजा सर्वदा अपने सेवकों पर दया रखता और उनकी योग्यतानुसार वेतन देता है, वह तीनों लोकों की रक्षा करने में समर्थ हो सकता है ॥ २७ ॥

एवमुक्त्वा सर्वेषां पाशच्छेदं कृत्वा हिरण्यकश्चित्रग्रीवमाह—'मित्र ! गम्यतामधुना स्वाश्रयं प्रति । भूयोऽपि व्यसने प्राप्ते समागन्तव्यम्' इति । तान्सम्प्रेष्य पुनरपि दुर्गं प्रविष्टः । चित्रग्रीवोऽपि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सपरिवारः स्वाश्रयमगमत् । अथवा साध्विद-मुच्यते—

ऐसा कह, हिरण्यकने सब कबूतरोंका बन्धन काटकर चित्रग्रीवसे कहा—'मित्र! अब तुम अपने स्थान पर जाओ, और फिर जब कभी कोइ कष्ट आ पड़े, तो आना।' इस तरह उन्हें भेजकर वह फिर अपने बिलमें घुस गया। चित्रग्रीव भी अनुचरों सहित अपने निवास-स्थानको चला गया। किसीने यह ठीक ही कहा है कि—

मित्रवान्साधयत्यर्थान्दुःसाध्यानपि वै यतः।
तस्मान्मित्राणि कुर्वीत समानान्येव चात्मनः ॥२८॥

मित्रवाले जीव अपने असाध्य कार्योंको भी सिद्ध कर लेते हैं। इसलिये सबको चाहिये कि अपनी आत्माके अनुकूल अनेक मित्र बनाये रहें ॥ २८ ॥

लघुपतनकोऽपि वायसः सर्वं तं चित्रग्रीव-बन्धमोक्षमवलोक्य विस्मितमना व्यचिन्तयत्—'अहो! बुद्धिरस्य हिरण्यकस्य शक्तिश्च दुर्गसामग्री च। तदीदृगेव विधिर्विहङ्गानां बन्धनमोक्षात्मकः। अहं च न कस्यचिद्विश्वसिमि चलप्रकृतिश्च। तथा-प्येनं मित्रं करोमि। उक्तञ्च—

वह लघुपतनक नामक कौआ भी चित्रग्रीव के बन्धन और मोक्ष का दृश्य देखकर विस्मित मन से विचारने लगा—'ओह! इस हिरण्यक की बुद्धि, शक्ति एवं दुर्ग की सामग्री, कैसी विचित्र है? मैं तो किसी का विश्वास नहीं करता और चंचल स्वभावका भी हूँ। फिर इसको मैं अपना मित्र बनाऊँगा। कहा भी है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपि सम्पूर्णतायुक्तैः कर्तव्याः सुहृदो बुधैः ।
नदीशः परिपूर्णोऽपि चन्द्रोदयमपेक्षते' ॥ २६ ॥

सब सामग्रियोंसे परिपूर्ण होते हुए भी, बुद्धिमानोंको अधिक मित्र बनाना चाहिये। जैसे समुद्र परिपूर्ण होता हुआ भी चन्द्रोदय की प्रतीक्षा करता है ॥ २६ ॥

एवं सम्प्रधार्य पादपादवतीर्य बिलद्वारमाश्रित्य चित्रग्रीववच्छब्देन हिरण्यकं समाहूतवान्- एह्येहि भो हिरण्यक ! एहि ।'

ऐसा निश्चय करके वह पेड़ से उतर कर उसके बिलके द्वारपर पहुँचा और चित्रग्रीव के समान (बोलीमें) हिरण्यक को पुकारने लगा। उसने कहा—'यहाँ आओ भाई ! हिरण्यक !! यहाँ आओ।'

तच्छब्दं श्रुत्वा हिरण्यको व्यचिन्तयत्— 'किमन्योऽपि कश्चित्कपोतो बन्धनशेषस्तिष्ठति येन मां व्याहरति।' आह च-'भोः ! को भवान् ?' स आह-'अहं लघुपतनको नाम वायसः। '

यह शब्द सुनकर हिरण्यक सोचने लगा—'क्या अभी किसी कबूतर का बन्धन बाकी है ? जो चित्रग्रीव मुझे बुला रहा है।' फिर स्पष्ट बोला—' भाई ! आप कौन हैं ?' उसने कहा—"मैं ' लघुपतनक' नामक कौआ हूँ।"

तच्छ्रुत्वा विशेषादन्तर्लीनो हिरण्यक आह- 'भोः ! द्रुतं गम्यतामस्मात्स्थानात् ।' वायस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आह--'अहं तव पार्श्वे गुरुकार्येण समागतः । तत्किं न क्रियते मया सह दर्शनम् ?'

यह सुनकर हिरण्यक और भी भीतर घुस गया और कहने लगा-"तुम शीघ्र इस स्थानसे चले जाओ ।" कौएने कहा-'मैं तुम्हारे पास एक बड़े कामसे आया हूं, अतः मुझे क्यों नहीं दर्शन देते ?'

हिरण्यक आह—'न मेऽस्ति त्वया सह संगमेन प्रयोजनम्' इति । स आह—'भोः ! चित्रग्रीवस्य मया तव सकाशात्पाशमोक्षणं दृष्टम् । तेन मम महती प्रीतिः सञ्जाता । तत्कदाचिन्ममापि बन्धने जाते तव पार्श्वान्मुक्तिर्भविष्यति । तत्क्रियतां मया सह मैत्री ।'

हिरण्यकने कहा—'मुझे तुमसे भेंट करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।' उसने कहा—'मैंने चित्रग्रीवको तुम्हारे पास बन्धन-मुक्त होते देखा है । इसी कारण मेरे मन में बड़ी प्रीति उत्पन्न हो गयी है; क्योंकि शायद मैं भी कहीं बन्धनमें फँस जाऊँ, तो तुम्हारे पास आनेसे बन्धन-रहित हो जाऊँगा । इसलिये तुम मेरे साथ मैत्री कर लो ।'

हिरण्यक आह—'अहो ! त्वं भोक्ता । अहं ते भोज्यभूतः । तत्का त्वया सह मम मैत्री ? तद्गम्यताम् मैत्री विरोधभावात्कथम् ? उक्तञ्च—

हिरण्यकने कहा-'अहो ! तुम मेरा भोक्ता हो और मैं तुम्हारा भोजन हूं । अतः तुम्हारे साथ मेरी कौन-सी मित्रता है ? तुम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चले जाओ, विरोधी वृत्ति (भक्ष्य-भक्षकोंमें) वालों के साथ भला कहीं मैत्री हो सकती है ? कहा भी है—

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम् ।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥३०॥

जिन दो व्यक्तियोंके धन बराबर हों तथा दोनोंके कुलव्यवहार समान हों, उन्हीं दोनोंमें मित्रता तथा विवाह-सम्बन्ध उचित है; किन्तु दो विषम परिस्थितिके पुरुषों (निर्बल एवं सबल) में विवाह एवं मैत्री करना सर्वथा अनुचित है ॥ ३० ॥

तथा च । और भी—

यो मित्रं कुरुते मूढ आत्मनोऽसदृशं कुधीः ।
हीनं वाप्यधिकं वापि हास्यतां यात्यसौ जनः ॥ ३१॥

जो मूर्ख अपने असमान (छोटे या बड़े) व्यक्तिसे मित्रता करता है, वह मूढ़ मनुष्य हँसीको प्राप्त होता है । अर्थात् संसारमें उसकी अप्रतिष्ठा होती है ॥ ३१ ॥

तद्गम्यताम्' इति । वायस आह—'भो हिरण्यक ! एषोऽहं तव दुर्गद्वार उपविष्टः । यदि त्वं मैत्रीं न करोषि ततोऽहं प्राणमोक्षणं तवाग्रे करिष्यामि । अथवा प्रायोपवेशनं मे स्यात्' इति । हिरण्यक आह—'भोः ! त्वया वैरिणा सह कथं मैत्रीं करोमि । उक्तश्च—

१-'भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिर्विपत्तेरेव कारणम् ।' अतः 'विरोधिना सह मैत्री (मित्रता) कदापि न कर्त्तव्या' इत्याशयः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसलिये आप जाइये ।' कौएने कहा—हे हिरण्यक! यह मैं आपके दुर्ग-द्वारपर बैठा हूँ। यदि आप मित्रता न करेंगे तो मैं अवश्य ही आपके सामने अपना प्राण-त्याग करूँगा, अथवा मेरा आमरणान्त 'अनशन' व्रत होगा।' तब हिरण्यकने कहा—'शत्रु-स्वरूप आपके साथ मैं मैत्री कैसे करूँ। कहा भी है—

वैरिणा न हि सन्दध्यात्सुश्लिष्टेनापि सन्धिना ।
सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम्' ।। ३२ ॥

प्रेमके साथ सुलह करनेवाले शत्रुसे भी मित्रता न करे, क्योंकि अच्छी तरह तपाया हुआ गर्म जल भी आगको बुझा ही देता है' ॥ ३२ ॥

वायस आह—'भोः! त्वया सह दर्शनमपि नास्ति, कुतो वैरम् । तत्किमनुचितं वदसि' ? हिरण्यक आह—'द्विविधं वैरं भवति । सहजं कृत्रिमं च । तत्सहजवैरी त्वमस्माकम् । उक्तञ्च-

कौएने कहा-'अहो ! आपसे तो देखा-देखी भी नहीं है, फिर शत्रुता कैसी ? इसलिये क्यों अनुचित बोलते हैं ? तब हिरण्यक ने कहा—शत्रुता दो तरहकी होती है। (१) स्वाभाविक और (२) कृत्रिम। इस कारण आप हमारे स्वाभाविक शत्रु हैं। कहा भी है—

कृत्रिमं नाशमभ्येति वैरं द्राक्कृत्रिमैर्गुणैः ।
प्राणदानं विना वैरं सहजं याति न क्षयम्' ॥ ३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृत्रिम (बनावटी) शत्रुता कृत्रिम गुणोंसे शीघ्र नष्ट हो

जाती है, किन्तु स्वभाविक शत्रुता प्राण-दान किये बिना नहीं नष्ट होती ॥२३॥

वायस आह—'भोः! द्विविधस्य वैरस्य लक्षणं श्रोतुमिच्छामि, तत्कथ्यताम् ।'

कौएने कहा—'अहो! मैं दोनों प्रकारकी शत्रुताका लक्षण सुनना चाहता हूँ, सो कहिये ।'

हिरण्यक आह—'भोः! कारणेन निर्वृत्तं कृत्रिमम् । तत्तदर्होपकारकरणाद्गच्छति । स्वाभाविकं पुनः कथमपि न गच्छति । तद्यथा—'नकुलसर्पाणाम्, शष्पभुङ्नखायुधानाम्, जलवह्न्योः, देवदैत्यानाम्, सारमेयमार्जाराणाम्, ईश्वरदरिद्राणाम्, सपत्नीनाम्, सिंहगजानाम्, लुब्धकहरिणानाम्, श्रोत्रियभ्रष्टक्रियाणाम्, मूर्खपण्डितानाम्, पतिव्रताकुलटानाम्, सज्जनदुर्जनानाम् । न कश्चित्केनापि व्यापादितः, तथापि प्राणान्सन्तापयन्ति ।'

हिरण्यकने कहा—'जो शत्रुता किसी कारणसे होती है, वह कृत्रिम शत्रुता कहलाती है, वह उसके योग्य उपकार करनेसे शान्त हो जाती है, किन्तु स्वाभाविक शत्रुता किसी प्रकार भी दूर नहीं होती । जैसे—नेवले और साँपकी, घास खानेवाले (गो-मृग) और नखायुधों (हिंसक व्याघ्र आदि) की, जल और अग्नि की, देवता और दैत्योंकी, कुत्ते और बिल्लीकी, धनी और दरिद्रोंकी, दो सौतोंकी, सिंह और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हाथियोंकी, व्याधा और हरिणोंकी, वैदिक (सदाचारी) ब्राह्मण और पतित ब्राह्मणोंकी, मूर्ख और पण्डितकी, पतिव्रता और व्यभिचारिणीकी एवं सज्जन और दुर्जनोंकी स्वाभाविक शत्रुता है। यद्यपि इनमेंसे किसीने किसीको मारा नहीं, परन्तु तो भी एक दूसरेके प्राणोंको जलाया ही करते हैं।

वायस आह—'भोः! अकारणमेतत्। श्रूयतां मे वचनम्—

कौएने कहा—'अजी! सब व्यर्थकी बातें हैं मेरी बात सुनो।

कारणान्मित्रतां याति कारणादेति शत्रुताम्।
तस्मान्मित्रत्वमेवात्र योज्यं वैरं न धीमता ॥३४॥

किसी कारण-वश ही मित्रता और शत्रुता होती है। इसलिये बुद्धिमानको चाहिये कि वह संसारमें केवल मैत्री ही करे, शत्रुता नहीं ॥ ३४ ॥

तस्मात्कुरु मया सह समागमं मित्रधर्मार्थम्।'
हिरण्यक आह—'भोः, श्रूयतां नीतिसर्वस्वम्—

'इस कारण तुम मित्रधर्म निभानेके लिये मेरे साथ प्रेमालाप करो।' हिरण्यकने कहा—'अच्छा, यह नीतिका निचोड़ सुन लो।

सकृद् दुष्टमपीष्टं यः पुनः सन्धातुमिच्छति।
स मृत्युमुपगृह्णाति गर्भमश्वतरी यथा ॥ ३५ ॥

जो मनुष्य अपनेसे द्वेष करनेवाले प्रियजनसे भी मित्रता करना चाहता है, वह उसी प्रकार मृत्यु (काल) को बुलाता है, जिस प्रकार खच्चरी गर्भ धारण करके मर जाती है ॥ ३५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथवा 'गुणवानहम्, न मे कश्चिद्वैरयातनां करिष्यति, एतदपि न सम्भाव्यम् । उक्तञ्च—

अथवा मैं गुणी हूँ,—इसलिये मेरे साथ कोई वैर नहीं करेगा'—यह भी सम्भव नहीं। कहा भी है:—

सिंहो व्याकरणस्य कर्त्तुरहरत्प्राणान्प्रियान्पाणिने-
र्मीमांसाकृतमुन्ममाथ सहसा हस्ती मुनिं जैमिनिम्
छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिङ्गलम-
ज्ञानावृतचेतसामतिरुषां कोऽर्थस्तिरश्चां गुणैः' ॥

व्याकरणके रचयिता पाणिनिमुनिके प्यारे प्राणोंको सिंहने ले लिया, मीमांसा शास्त्रके प्रणेता जैमिनिमुनिको हाथीने मार डाला और छन्दःशास्त्रके आविष्कारक पिंगलमुनिको समुद्रके तट-पर घरियारने खा लिया, तो फिर अज्ञानसे आवृत हृदयवाले तथा अतिशय क्रोधी तिर्यग्योनि (पशु-कीटादिकों) के जीवोंके गुणोंसे क्या लाभ होना है ? यह 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है।२६।

वायस आह—'अस्त्येतत् । तथापि श्रूयताम्-

कौएने कहा—'यह बात ठीक है, तो भी सुनिये—

उपकाराच्च लोकानां निमित्तान्मृगपक्षिणाम् ।
भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां मैत्री स्याद्दर्शनात्सताम् ॥

उपकारसे साधारण श्रेणीके लोगोंकी, किसी विशेष कारणसे पशु और पक्षियोंकी, भय अथवा लोभसे मूर्खोंकी और दर्शनमात्रसे ही सज्जनोंकी मैत्री हुआ करती है ।। २७ ।।

मृद्घटइव सुखभेद्यो दुःसन्धानश्च दुर्जनो भवति ।

१—दुर्जना अपराधाऽनपराधौ न गणयन्तीति भावः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुजनस्तु कनकघट इव दुर्भेदः सुकरसन्धिश्च ॥३८॥

मिट्टीके घड़ेकी तरह दुर्जन अनायास ही फोड़े जा सकते हैं, किन्तु बड़ी कठिनाईसे भी जुटते नहीं। परन्तु सज्जन कनक-घट की तरह कठिनाईसे फूटते हैं और (यदि फूट भी जाँय तो) सरलतासे फिर जुट जाते हैं ॥ ३८ ॥ 'अर्य्यावृत्त'।

इक्षोरग्रात्क्रमशः पर्वणि पर्वणि यथा रसविशेषः ।
तद्वत्सज्जनमैत्री विपरीतानां तु विपरीता ॥ ३९ ॥

जिस प्रकार ऊखकी अगली गाँठसे लेकर क्रमशः आगे की सब गाँठोंमें रस बढ़ता जाता है, उसी प्रकार सज्जनोंकी मित्रता भी उत्तरोत्तर सरस होती जाती है, किन्तु दुर्जनोंकी मित्रता इसके विपरीत (नीरस अथवा उत्तरोत्तर घटनेवाली) ही होती है ॥ ३९ ॥

तथा च। और भी—

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना
छायेव मैत्री खल-सज्जनानाम् ॥ ४० ॥

जैसे दिनके पूर्वार्द्धमें छाया लम्बी होती और ज्यों २ दिन चढ़ता है त्यों २ वह घटती जाती है, वैसे ही दुर्जनोंकी मैत्री

१—जैसे मिट्टी का घड़ा फूट जाने पर फिर जुटता नहीं, वैसेही फूटे हुए दुर्जन लोगोंसे संधि करना कठिन है।

२—प्रथमं महती पश्चात् लघ्वी दुर्जनस्य, पूर्वं लघ्वी पश्चात् सज्जनस्य च मैत्रीति भावः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षणिक होती है । अर्थात् पहले अधिक होती है, फिर पीछेसे उत्तरोत्तर घटने लगती है । परन्तु सज्जनोंकी मैत्री दो पहर के बाद छोटीसे बड़ी होती हुई छायाके समान पहले कम होती है, पीछे उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है ॥ ४० ॥ 'उपजाति' ।

तत्साधुरहम् । अपरं त्वां शपथादिभिर्निर्भयं करिष्यामि ।' स आह—'न मेऽस्ति ते शपथैः प्रत्ययः । उक्तञ्च—

सो मैं सज्जन न हूँ, अतः शपथ-आदिके द्वारा भी मैं तुम को निर्भय कर दूँगा ।' हिरण्यकने कहा—'शपथ आदिके द्वारा भी मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं है । कहा भी है—

शपथैः सन्धितस्यापि न विश्वासं व्रजेद्रिपोः ।
श्रूयते शपथं कृत्वा वृत्रः शक्रेण सूदितः ॥ ४१ ॥

शपथ (सौगंध) करके भी मित्रता किये हुए शत्रुपर विश्वास न करे, क्योंकि 'शपथ कर लेनेपर भी इन्द्रद्वारा वृत्रासुर मारा गया'—ऐसा सुना जाता है ॥ ४१ ॥

न विश्वासं विना शत्रुर्देवानामपि सिध्यति ।
विश्वासात्त्रिदशेन्द्रेण* दितेर्गर्भो विदारितः ॥४२॥

*सुना जाता है कि प्राचीनकाल में हिरण्यकशिपुके शोकसे दुःखित 'दिति' ने अपने पुत्रों के शत्रु इन्द्र को मारने के लिये एक बार गर्भ धारण किया । इन्द्रने उस समय अपनी विमाता जानकर सेवाके बहाने दिनमें सोई हुई दितिके गर्भमें प्रविष्ट हो, गर्भस्थ जीवको खण्ड खण्ड कर डाला । उस गर्भस्थ प्राणवायुके ऊनचालिस ४९ भाग होनेके कारण पवन देवताके ४९ भेद हो गये । तभीसे 'उनचासो पवन' कहलाने लगे । ऐसी कथा पुराणोंमें पायी जाती है ।　　[द्विजेन्द्र]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिना विश्वास उत्पन्न कराये देवतालोग भी शत्रुपर विजयी नहीं हो सकते, क्योंकि विश्वाससे ही इन्द्रने दितिके गर्भका विनाश किया था ॥ ४२ ॥

अन्यच्च । और भी–

बृहस्पतेरपि प्राज्ञस्तस्मान्नैवात्र विश्वसेत् ।
य इच्छेदात्मनो वृद्धिमायुष्यं च सुखानि च ॥४३॥

अत एव जो मनुष्य अपनी उन्नति, आयु तथा सुख चाहता हो, वह इस विषयमें बृहस्पतिपर भी विश्वास न करे ॥ ४३ ॥

तथा च । और भीः—

सुसूक्ष्मेणापि रन्ध्रेण प्रविश्याभ्यन्तरं रिपुः ।
नाशयेच्च शनैः पश्चात्प्लवं सलिलपूरवत् ॥ ४४ ॥

अत्यन्त छोटेसे छिद्रद्वारा भी भीतर प्रवेश करके शत्रु उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जिसप्रकार नौका के महीन छेदों द्वारा जल नाव में जाकर उसे डूबो देता है ॥ ४४ ॥

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥४५॥

जो मनुष्य विश्वासपात्र न हो, उसपर विश्वास न करे जो साधारणतया विश्वासपात्र हो, उसपर भी अधिक विश्वास न करे, क्योंकि विश्वाससे उत्पन्न भय जड़ से ही निर्मूल कर देता है ॥ ४५ ॥

न बध्यते ह्यविश्वस्तो दुर्बलोऽपि मदोत्कटैः ।
विश्वस्तास्त्वाशु बध्यन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलैः ॥४६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्वास न रखने वाला निर्बल शत्रु, बड़े २ बलवानों द्वारा भी नहीं मारा जा सकता; परन्तु जिनके भीतर विश्वास उत्पन्न हो गया, वे बलवान् मनुष्य भी दुर्बल शत्रुओं द्वारा मार डाले जाते हैं ॥ ४६ ॥

सुकृत्यं विष्णुगुप्तस्य मित्राप्तिर्भार्गवस्य च ।
बृहस्पतेरविश्वासो नीतिसन्धिस्त्रिधा स्थितः ॥४७॥

अच्छे काम करके सन्धि करना, यह नीति 'विष्णुगुप्त' (चाणक्य) की है, मित्रोंको संगठित करके अपना बल बढ़ाना, यह 'शुक्राचार्यकी' नीति है और किसीपर भी विश्वास न करना, यह 'बृहस्पतिकी' नीति है ॥ ४७ ॥

तथा च । और भी—

महताप्यर्थसारेण यो विश्वसिति शत्रुषु ।
भार्यासु सुविरक्तासु तदन्तं तस्य जीवितम्' ॥४८॥

कोई महान् पुरुष भी, यदि प्रयोजनवश या किसी प्रकार से शत्रुपर तथा अपनी अप्रसन्न स्त्रीपर विश्वास करता है तो बस, वहीं तक उसका जीवन है ॥ ४८ ॥

तच्छ्रुत्वा लघुपतनकोऽपि निरुत्तरश्चिन्तयामास—'अहो, बुद्धिप्रागल्भ्यमस्य नीतिविषये ! अथवा अत एवास्योपरि मैत्रीपक्षपातः । स आह—'भो हिरण्यक !

यह सुनकर लघुपतनक भी निरुत्तर होकर सोचने लगा—'अहो ! नीतिशास्त्रके विषयमें इसकी कैसी विलक्षण बुद्धि है ! इसीलिये तो इससे मैत्री करनेको जी चाहता है ।' उसने कहा—'हे हिरण्यक !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सतां साप्तपदं मैत्रमित्याहुर्विबुधा जनाः ।
तस्मात्त्वं मित्रतां प्राप्तो वचनं मम तच्छृणु ॥४६॥

सज्जनोंकी मैत्री केवल सात पद चलने या सात वाक्य बोलनेपर ही हो जाती है—ऐसा विद्वानोंका कथन है । इसलिये तुम हमारे मित्र हो गये, अब हमारी बात सुनो ॥ ४६ ॥

दुर्गस्थेनापि त्वया मया सह नित्यमेवालापो गुणदोषसुभाषितगोष्ठीकथाः सर्वदा कर्त्तव्याः, यद्येवं न विश्वसिषि ।'

यदि तुम मेरे ऊपर विश्वास नहीं करते हो तो अपने बिलमें ही बैठे २ नित्य मेरे साथ बातचीत किया करो और गुणदोषसे सम्बन्ध रखनेवाली सत्संग–चर्चा भी किया करो ।"

तच्छ्रुत्वा हिरण्यकोऽपि व्यचिन्तयत्—'विदग्धवचनोऽयं दृश्यते लघुपतनकः सत्यवाक्यश्च, तद्युक्तमनेन मैत्रीकरणम् । परं कदाचिन्मम दुर्गे चरणपातोऽपि न कार्यः । उक्तञ्च—

यह सुनकर हिरण्यकने भी सोचा—'यह कौआ बोलनेमें बड़ा चतुर मालूम होता है और इसकी बातें भी सच जान पड़ती हैं, इसलिये इसके साथ मित्रता करना उचित है । पर शर्त्त यह है कि मेरे बिलमें यह पैर भी न रखे । कहा है—

१—कविवर कालिदासने भी केवल बातचीतसे ही मित्रताका सम्बन्ध स्थापित किया है । यथा—"सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नो संगतयोर्वनान्ते ।" (रघुवंशे)

२—विदग्धस्य पण्डितस्य इव वचनं यस्य तथाभूतः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भीतभीतः पुरा शत्रुर्मन्दं मन्दं विसर्पति।
भूमौ प्रहेलया पश्चाज्जारहस्तोऽङ्गनास्विव' ॥ ५० ॥

डरा हुआ वैरी पहले तो धीरे २ चलता है, फिर जोरोंसे इस प्रकार दौड़ने लगता है, जैसे पर-स्त्रीपर जार-पुरुषका हाथ धीरे धीरे (उसे फँसाने के लिये) बढ़ता है ॥ ५० ॥

तच्छ्रुत्वा वायस आह—'भद्र, एवं भवतु।' ततः प्रभृति द्वौ तावपि सुभाषितगोष्ठीसुखमनुभवन्तौ तिष्ठतः। परस्परं कृतोपकारौ कालं नयतः। लघुपतनकोऽपि मांसशकलानि मेध्यानि बलिशेषाण्यन्यानि वात्सल्याहृतानि पक्वान्नविशेषाणि हिरण्यकार्थमानयति। हिरण्यकोऽपि तण्डुलानन्यांश्च भक्ष्यविशेषाँल्लघुपतनकार्थं रात्रावाहृत्य तत्कालायातस्यार्पयति। अथवा युज्यते द्वयोरप्येतत्। उक्तश्च—

यह सुनकर हिरण्यक कहने लगा—'अच्छा महाशय! यही सही।' तबसे वे दोनों सत्संग-सुख का अनुभव (आनन्द) करते हुए रहने लगे और आपस में एक दूसरे की कृतज्ञता (सहानुभूति) मानते हुए दिन बिताने लगे। लघुपतनक भी मांसके टुकड़े तथा पवित्र बलि-शेष अन्न एवं अनेक प्रकारके पकवान हिरण्यकके लिये लाया करता था। हिरण्यक भी चावल-आदि नाना प्रकार की भोजन-सामग्री रातको लाता और जब लघुपतनक आता तो उसे दे दिया करता था। अथवा

१—परपुरुष (व्यभिचारी) २—मांसखण्डानि। ३—पवित्राणि।
४—पूजातोऽवशिष्टानि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन दोनोंका ऐसा (पारस्परिक व्यवहार) करना उचित ही था। कहा भी है—

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षडविधं प्रीतिलक्षणम् ॥५१॥

देना, लेना, गुप्त बातें कहना, पूछना, खाना तथा खिलाना ये ही छः प्रकार प्रेमके लक्षण कहे गये हैं ॥ ५१ ॥

नोपकारं विना प्रीतिः कथंचित्कस्यचिद्भवेत् ।
उपयाचितदानेन यतो देवा ह्यभीष्टदाः ॥ ५२ ॥

विना उपकारके किसीसे किसीकी प्रीति नहीं होती, क्योंकि देवता लोग भी तो कुछ मनौती (मखौती !) मान (कर) देनेसे ही मनोरथ सिद्ध करते हैं १ ॥ ५२ ॥

तावत्प्रीतिर्भवेल्लोके यावद्दानं प्रदीयते ।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम् ॥५३॥

संसारमें जबतक कुछ दान दिया जाता है, तभी तक प्रेम होता है, क्योंकि बछरू भी दूध का अभाव जानकर माता (गौ) का परित्याग कर दिया करता है। अर्थात् जैसे बछड़ा गायके थनमें दूध न जानकर छोड़ देता है, वैसे ही संसार के प्राणी जिससे कुछ स्वार्थ सिद्ध नहीं होता, उसे छोड़ देते हैं ॥ ५३ ॥

पश्य दानस्य माहात्म्यं सद्यः प्रत्ययकारणम् ।
यत्प्रभावादपि द्वेषी मित्रतां याति तत्क्षणात् ॥५४॥

अतः विश्वास दिलानेवाले दान का महत्व तो देखिये, कि जिसके प्रभावसे शत्रु भी शीघ्र ही मित्र बन जाते हैं ॥ ५४ ॥

१—जाही से कछु पाइये, करिये ताकी आस ।
रीते सरवर पर गये कैसे बुझत पियास ॥ (वृन्द)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुत्रादपि प्रियतरं खलु तेन दानं
मन्ये पशोरपि विवेकविवर्जितस्य ।
दत्ते खले नु निखिलं खलु येन दुग्धं
नित्यं ददाति महिषी ससुताऽपि पश्य ॥५५॥

ज्ञान-हीन पशुको भी 'दान' पुत्रसे अधिक प्रिय वस्तु है । देखिये न ! बच्चे (पड़रू) वाली भैंस भी खली (खरी !) देनेपर प्रतिदिन अपना सारा दूध दे डालती है ॥ ५४ ॥ यह 'वसन्ततिलका' वृत्त है ।

किं बहुना । अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता ?

प्रीतिं निरन्तरां कृत्वा दुर्भेद्यां नखमांसवत् ।
मूषको वायसश्चैव गतौ कृत्रिममित्रताम् ॥५६ ।

नख और मांसकी तरह निरन्तर प्रेम करके चूहा और कौआ दोनों ही आपसमें कृत्रिम मित्र बन गये ॥ ५६ ॥

एवं स मूषकस्तदुपकाररञ्जितस्तथा विश्वस्तो यथा तस्य पक्षमध्ये प्रविष्टस्तेन सह सर्वदैव गोष्ठीं करोति ।

इस प्रकार कौएके उपकारों से प्रसन्न होकर चूहेने उसपर इतना विश्वास कर लिया कि वह हमेशा उसके पंखोंके बीच में बैठकर बातचीत किया करता था ।

१-तेल निकाल लेनेपर जो सीठी बचती है, उसे 'खली' कहते हैं । सरसों, तीसी तिल और बर्रे-आदि अनेक प्रकारकी खरियोंमें से तिल और तीसीकी खरी विशेष दुग्धकारिणी होती है । अतः यहाँ पर तीसी (अलसी) की खरीसे तात्पर्य्य है ।　　　　(द्विजेन्द्र)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथान्यस्मिन्नहनि वायसोऽश्रुपूर्णनयनः सम-भ्येत्य सगद्गदं तमुवाच—'भद्र हिरण्यक ! वि-रक्तिः सञ्जाता मे साम्प्रतं देशस्यास्योपरि, तदन्यत्र यास्यामि ।' हिरण्यक आह—'भद्र ! किं विरक्तेः कारणम् ?' स आह—'भद्र ! श्रूयताम् ।

इसके बाद दूसरे दिन कौआ आँखोंमें आँसू भरकर आया और गद्गद स्वरसे बोला—'भाई हिरण्यक ! मुझे तो इस देशसे वैराग्य-सा हो गया है, इसलिये मैं दूसरी जगह चला जाऊँगा'। हिरण्यकने कहा—'भाई, इस वैराग्यका क्या कारण है ?' उसने कहा—'सुनिये महाशय !—

अत्र देशे महत्याऽनावृष्ट्या दुर्भिक्षं सञ्जातम् । दुर्भिक्षत्वाज्जनो बुभुक्षापीडितः कोऽपि बलिमात्र-मपि न प्रयच्छति । अपरं गृहे गृहे बुभुक्षितजनैर्विह-ङ्गानां बन्धनाय पाशाः प्रगुणीकृताः सन्ति । अह-मप्यायुः शेषतया पाशेन बद्ध उद्धारितोऽस्मि । एतद्विरक्तेः कारणम् । तेनाहं विदेशं चलित इति बाष्पमोक्षं करोमि ।'

'यहाँ बड़ी प्रबल अनावृष्टिके कारण 'अकाल' पड़ गया है, जिससे सब जीव भूखसे पीड़ित हैं। यहाँ तक कि अब कोई बलि (वैश्वदेव) भी नहीं देता। दूसरे, भूखे मनुष्योंने पक्षियोंको फँसानेके लिये घर घरमें जाल फैला रखा है। मैं भी आयु शेष

१—काकेभ्य इति शेषः ।

२—सज्जीकृत्य स्थापिताः । ३—उन्मुक्तोऽस्मि ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहनेके कारण एक जालमें फँसकर बच गया हूँ। यही इस वैराग्यका कारण है।' इसलिये मैं विदेश जा रहा हूँ और इसीसे आँसू बहा रहा हूँ।'

हिरण्यक आह—'अथ भवान् क्व प्रस्थितः?' स आह—'अस्ति दक्षिणापथे वनगहनमध्ये महासरः। तत्र त्वत्तोऽधिकः परमसुहृत्कूर्मो मन्थरको नाम। स च मे मत्स्यमांसखण्डानि दास्यति। तद्भक्षणात्तेन सह सुभाषितगोष्ठीसुखमनुभवन् सुखेन कालं नेष्यामि। नाहमत्र विहङ्गानां पाशबन्धनेन क्षयं द्रष्टुमिच्छामि। उक्तञ्च—

हिरण्यकने कहा—'तो आप कहाँ जा रहे हैं?' उसने कहा—'दाक्षिणात्य-प्रदेशके एक घने जंगलमें (एक) बड़ा भारी तालाब है। वहाँ मेरा तुमसे भी अधिक प्रिय 'मंथरक' नामका एक कछुआ मित्र रहता है। वह मुझे (खानेको) मांसके टुकड़े देगा। उसे खाकर उसके साथ वार्तालापका सुख भोगता हुआ आनन्दसे अपने दिन काटूँगा। यहाँ बैठे बैठे जालमें फँसकर पक्षियोंका विनाश मैं नहीं देखना चाहता। कहा भी है—

अनावृष्टिहते देशे शस्ये च प्रलयं गते।
धन्यास्तात! न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम् ॥५७॥

हे तात! अनावृष्टि (सूखा पड़ने) से देश नष्ट हो जाने तथा अन्नके अभाव हो जानेपर जो लोग अपने देश और कुलका विनाश नहीं देखते, वे धन्य हैं! ॥ ५७ ॥

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥५८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समर्थ प्राणियोंके लिये अत्यन्त बड़ा बोझ भी क्या है ? व्यापारी मनुष्योंके लिये कौन-सा स्थान दूर है ? विद्वान् मनुष्यों के लिये विदेश क्या है ? मीठी बातें बोलनेवालोंका भला शत्रु कौन है ? अर्थात् कोई नहीं ॥ ५८ ॥

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान्सर्वत्र पूज्यते' ॥५९॥

विद्वान होना और राजा होना, ये दोनों कभी भी बराबर नहीं हो सकते; क्योंकि राजा अपने ही देशमें पूजा जाता है, पर विद्वान् सर्वत्र ही पूजित होता है ॥ ५९ ॥

हिरण्यक आह—'यद्येवं तदहमपि त्वया सहागमिष्यामि । ममापि महद्दुःखं वर्तते ।' वायस आह—'भोः ! तव किं दुःखम् ? तत्कथय ।' हिरण्यक आह—'भोः ! बहु वक्तव्यमस्त्यत्र विषये । तत्रैव गत्वा सर्वं सविस्तरं कथयिष्यामि ।' वायस आह—'अहं तावदाकाशगतिः । तत्कथं भवतो मया सह गमनम् ?' स आह—'यदि मे प्राणान् रक्षसि तदा स्वपृष्ठमारोप्य मां तत्र प्रापयिष्यसि । नान्यथा मम गतिरस्ति ।'

हिरण्यकने कहा—'यदि ऐसा है तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा । मुझे भी बहुत दुःख है ।' कौएने कहा—'तुम्हें क्या दुःख है ? सो बताओ ।' हिरण्यकने कहा—'इस विषय में मुझे बहुत कुछ कहना है । वहाँ ही चलकर मैं विस्तारपूर्वक कहूँगा ।' तब कौआ बोला—मैं तो आकाशगामी हूँ, फिर मेरे साथ तुम्हारा जाना कैसे होगा ?' उसने कहा—'यदि तुम हमारे प्राणोंको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१—नभचरः (खगः) २—उड़ने की विधि (उड़ान)

बचाना चाहोगे तो अपनी पीठपर बैठाकर, मुझे वहाँ पहुंचा दोगे, और दूसरा मेरे लिये कोई उपाय नहीं है।'

तच्छ्रुत्वा सानन्दं वायस आह—'यद्येवं तद्धन्योऽहं, यद्भवतापि सह तत्र कालं नयामि। अहं सम्पातादिकानष्टावुड्डीनगतिविशेषान् वेद्मि। तत्समारोह मम पृष्ठम् येन सुखेन त्वां तत्सरः प्रापयामि।' हिरण्यक आह—'उड्डीनानां नामानि श्रोतुमिच्छामि।' स आह—

यह सुनकर कौएने आनन्दके साथ कहा—'यदि ऐसा हो सकता है तो मैं धन्य हूँ। वहाँ तुम्हारे साथ भी अपना समय व्यतीत करूँगा, क्योंकि मैं 'सम्पात'—आदि उड़नेकी मुख्य २ आठ क्रियाओंको जानता हूँ। अतः तुम मेरी पीठपर चढ़ो, जिससे मैं सुखपूर्वक तुमको उस तालाब पर पहुँचा दूँ।' हिरण्यक ने कहा—'मैं उड़नेकी उन आठ प्रकारोंके नाम को सुनना चाहता हूँ। उसने कहा—

'सम्पातं विप्रपातं च महापातं निपातनम्।
वक्रं तिर्यक् तथा चोर्ध्वमष्टमं लघुसंज्ञकम् ॥६०॥

'सम्पात, विप्रपात, महापात, निपात, वक्र, तिर्यक्, ऊर्ध्व और आठवाँ लघु नामक उड़ान* है ॥ ६० ॥

तच्छ्रुत्वा हिरण्यकस्तत्क्षणादेव तदुपरि समारूढः। सोऽपि शनैः शनैस्तमादाय सम्पातोड्डीनप्र-

(१) सम्पाती' नामक पक्षीके समान उड़ना। (२) ऊपर गिरह मारना। (३) एकाएक नीचे आना। (४) अत्यन्त शीघ्र उड़ना।

* उड़ानकी इन्हीं विधियों को कबूतरबाज लोग 'अठखेलियाँ' कहते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थितक्रमेण तत्सरः प्राप्तः। ततो लघुपतनकं मूषकाधिष्ठितं विलोक्य दूरतोऽपि देशकालविद्-सामान्यकाकोऽयमिति ज्ञात्वा सत्वरं मन्थरको जले प्रविष्टः।

यह सुनकर तुरन्त हिरण्यक उसकी पीठपर चढ़ गया। वह कौआ भी उसे लेकर 'सम्पात' नामक उड़ान की विधि से उड़कर धीरे २ उस सरोवरपर आ पहुँचा। चूहेको पीठपर लादे लघुपतनक को दूर से ही आते देखकर, देशकालको जाननेवाले 'मन्थरकने' सोचा कि यह साधारण कौआ नहीं है, ऐसा जानकर वह शीघ्र जल में कूद पड़ा।

लघुपतनकोऽपि तीरस्थतरुकोटरे हिरण्यकं मुक्त्वा शाखाग्रमारुह्य तारस्वरेण[1] प्रोवाच—'भो मन्थरक! आगच्छागच्छ। तव मित्रमहं लघुपतनको नाम वायसश्चिरात्सोत्कण्ठः समायातः। तदागत्यालिङ्गय माम्। उक्तञ्च—

लघुपतनकने भी पासही एक वृक्षके खोखलेमें हिरण्यकको बैठा दिया और एक डालीपर स्वयं बैठकर ऊँचे स्वरसे पुकारने लगा—'भाई मन्थरक! आओ, आओ! मैं तुम्हारा मित्र लघुपतनक नामक कौआ हूँ और बड़ी उत्कंठासे बहुत दिनों बाद आया हूँ। इसलिये आकर मुझे हृदयसे लगाओ। कहा भी है—

किं चन्दनैः सकर्पूरैस्तुहिनैः किं च शीतलैः।
सर्वे ते मित्र[2]गात्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥६१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१—उच्चस्वरेण। २—'पुत्र' इति पाठान्तरं दृश्यते।

कपूर मिले हुए चन्दन और वर्फ़की ठण्ढकसे क्या हो सकता है ? क्योंकि ये मित्रके शरीरकी ठण्ढककी सोलहवीं कलाको भी नहीं पा सकते ! ॥ ६१ ॥

तथा च । और भी—

केनामृतमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ।
आपदां च परित्राणं शोकसन्तापभेषजम् ॥६२॥

"मित्र" इस दो अक्षर वाले सुधाके समान मधुर शब्दकी किसने सृष्टि (रचना) की है ? जो आपत्तियोंसे बचाने वाला शोक-सन्तापके लिये परम औषध है ॥ ६२ ॥

तच्छ्रुत्वा निपुणतरं परिज्ञाय सत्वरं सलिलान्निष्क्रम्य पुलकिततनुरानन्दाश्रुपूरितनयनो मन्थरकः प्रोवाच–'एह्येहि मित्र ! आलिङ्गय माम् । चिरकालान्मया त्वं न सम्यक्परिज्ञातः । तेनाहं सलिलान्तः प्रविष्टः । उक्तञ्च—

यह सुन तथा अच्छी तरह पहचान कर, मन्थरक झटपट तालाबसे बाहर आया और रोमांचित शरीर हो आँखोंमें आनन्दके आँसू भरकर कहने लगा–'आओ, आओ मित्र ! मेरे हृदयसे लग जाओ । तुमसे भेंट हुए बहुत दिन बीत गये, इसीसे तुम्हें अच्छी तरह मैं पहचान न सका; इस कारण पानीमें घुस गया । कहा भी है:—

यस्य न ज्ञायते वीर्यं न कुलं न विचेष्टितम् ।
न तेन संगतिं कुर्यादित्युवाच बृहस्पतिः' ॥ ६३ ॥

जिसका बल, कुल और व्यवहार न मालूम हो, उसके साथ कभी मित्रता न करे, ऐसा बृहस्पतिने कहा है' ॥ ६३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्ते लघुपतनको वृक्षादवतीर्य तमालिङ्गितवान् । अथवा साध्विदमुच्यते--

ऐसा कहने पर लघुपतनक वृक्षसे उतर आया और कछुएको हृदयसे लगाया । किसीने ठीक ही कहा है—

अमृतस्य प्रवाहैः किं कायक्षालनसम्भवैः ?
चिरान्मित्रपरिष्वङ्गो योऽसौ मूल्यविवर्जितः ॥६४॥

जो केवल शरीर धोने के लिये उत्पन्न हुए हैं, ऐसे अमृतमय (जल) के प्रवाहोंसे क्या होना है ? (अर्थात् कुछ नहीं) परन्तु बहुत दिनों बाद जो मित्रका मिलन होता है, वह तो एक अमूल्य ही वस्तु है ॥ ६४ ॥

एवं द्वावपि तौ विहितालिङ्गनौ परस्परं पुलकितशरीरौ वृक्षादधः समुपविष्टौ प्रोचतुरात्मचरित्रवृत्तान्तम् । हिरण्यकोऽपि मन्थरस्य प्रणामं कृत्वा वायसाऽभ्यांशे समुपविष्टः ।

इस तरह परस्पर प्रेमालिङ्गन कर लेने के बाद पुलकित शरीर होकर वे दोनों उस वृक्ष के नीचे बैठ गये और अपना अपना हाल कहने लगे हिरण्यक भी मन्थरक को प्रणाम करके उस कौएके पास बैठ गया ।

अथ तं समालोक्य मन्थरको लघुपतनकमाह-'भोः ! कोऽयं मूषकः कस्मात्त्वया भक्ष्यभूतोऽपि पृष्ठमारोप्यानीतः ? तन्नात्र स्वल्पकारणेन भाव्यम् । तच्छ्रुत्वा लघुपतनक आह-'भोः ! हिरण्यको नाम

१ "आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम् । पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम् ॥" (इत्यमरः) २—अभ्याशो समीपे ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूषकोऽयम् । मम सुहृद्द्वितीयमिव जीवितम् । तत्किं बहुना—

इसके बाद उसे देखकर मन्थरकने ल पतनकसे पूछा—'क्यों, भाई! यह चूहा कौन है? तुम्हारा भक्ष्य होते हुए भी तुमने इसे अपनी पीठपर बैठाकर किसलिये लाया? अतः इसमें कोई साधारण कारण न होगा!' यह सुनकर लघुपतनकने कहा—यह हिरण्यक नामका चूहा है। यह मेरे दूसरे प्राणोंके समान प्रिय मित्र है। अधिक कहनेसे क्या मतलब!

पर्जन्यस्य यथा धारा यथा च दिवि तारकाः ।
सिकतारेणवो यद्वत्संख्यया परिवर्जिताः ॥ ६५ ॥
गुणाः संख्यापरित्यक्तास्तद्वदस्य महात्मनः ।
परं निर्वेदमापन्नः सम्प्राप्तोऽयं तवान्तिकम्' ॥६६॥

जैसे मेघ की जल-धाराएँ, आकाशकी तारिकाएँ और बालूके कण संख्यासे रहित होते हैं (उन्हें कोई गिन नहीं सकता) उसी तरह महात्माके गुणोंकी संख्या अनगिनत हैं, इसीलिये यह विरक्त होकर तुम्हारे पास आया है॥ यह दोनों श्लोक युग्मक है। इसलिये दोनोंके अर्थ एक साथ हुए ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

मन्थरक आह—'किमस्य वैराग्यकारणम् ?' वायस आह—'पृष्टो मया, परमनेनाभिहितम्,

१—जहाँ दो श्लोकों का एक साथ अन्वय या अर्थ हो, उसे 'युग्मक' कहते हैं। यथा—

"द्वाभ्यां युग्ममिति प्रोक्तं त्रिभिः श्लोकै र्विशेषकम् ।
चतुर्भिस्तु कलापः स्यात्तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम् ॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यद्बहु वक्तव्यमस्ति । तत्तत्रैव गत्वा कथयिष्यामि। ममापि न निवेदितम् । तद्भद्र हिरण्यक ! इदानीं निवेद्यतामुभयोरप्यावयोस्तदात्मनो वैराग्यकारणम् ।' सोऽब्रवीत्—

मन्थरकने कहा—'इसके वैराग्यका क्या कारण है ?' कौएने कहा—"मैंने इससे पूछा था, तो इसने कहा कि मुझे बहुत कुछ कहना है, वहाँ ही चलकर कहूँगा" । किन्तु इसने कुछ कहा नहीं । इसलिये हे मित्र हिरण्यक ! अब तुम अपने और हमारे दोनोंके वैराग्यका कारण कहो' । उसने कहा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथा १

अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरम् । तस्य नातिदूरे मठायतनं भगवतः श्री महादेवस्य । तत्र च ताम्रचूडो नाम परिव्राजकः प्रतिवसतिस्म । स च नगरे भिक्षाटनं कृत्वा प्राणयात्रां समाचरति । भिक्षाशेषं च तत्रैव भिक्षापात्रे निधाय तद्भिक्षापात्रं नागदन्तेऽवलम्ब्य पश्चाद्रात्रौ स्वपिति । प्रत्यूषे च तदन्नं कर्मकराणां दत्वा सम्यक्तत्रैव देवतायतने सम्मार्जनोपलेपनमण्डनादिकं समाज्ञापयति ।

दक्षिण प्रदेशमें 'महिलारोप्य' नामका एक नगर है । उसके पास ही भगवान् शंकरजी का एक मन्दिर है । वहाँ 'ताम्रचूड़' नामक एक संन्यासी रहता था । वह नगरमें भीख माँग कर अपनी जीविका चलाता था । भोजनसे बचे हुए अन्न भिक्षपात्रमें रख, उसे खूँटीपर टाँगकर वह रातको सोया करता था । सवेरे फिर वही अन्न मजदूरोंको देकर उस मण्डपकी सफाई, लिपाई, पुताई और शृङ्गार आदि काम करनेकी आज्ञा देता था ।

अन्यस्मिन्नहनि मम बान्धवैर्निवेदितम्—'स्वामिन्! मठायतने सिद्धमन्नं मूषकभयात्तत्रैव भिक्षापात्रे निहितं नागदन्तेऽवलम्बितं तिष्ठति सदैव ।

१—मन्दिरम् । २ परितः समन्ताद् व्रजतीति परिव्राजकः संन्यासीत्यर्थः ।
३—गृहभित्तिस्थिते दण्डविशेषे । हिन्दीभाषायां 'खूंट', इति कथ्यते ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तद्वयं भक्षयितुं न शक्नुमः । स्वामिनः पुनरगम्यं किमपि नास्ति । तत्किं वृथाटनेनान्यत्र ? अद्य तत्र गत्वा यथेच्छं भुञ्जामहे तव प्रसादात् ।'

दूसरे दिन मेरे बन्धुओंने मुझसे कहा—'स्वामिन् ! उस मठमें हमेशा सिद्ध (पका) अन्न चूहोंके भयसे खूँटीपर टँगा रहता है । उसे हम लोग खा नहीं सकते, किन्तु आपके लिये कोई वस्तु अप्राप्य नहीं है । इसलिये दूसरी जगह भटकनेसे क्या लाभ है ? आज वहाँ चलकर आपकी कृपासे हमलोग इच्छापूर्वक भोजन करें ।

तदाकर्ण्याहं सकलयूथपरिवृतस्तत्क्षणादेव तत्र गतः । उत्पत्य च तस्मिन् भिक्षापात्रे समारूढः । तत्र भक्ष्यविशेषाणि सेवकानां दत्त्वा पश्चात्स्वयमेव भक्षयामि । सर्वेषां तृप्तौ जातायां भूयः स्वगृहं गच्छामि । एवं नित्यमेव तदन्नं भक्षयामि । परिव्राजकोऽपि यथाशक्ति रक्षति । परं यदैव निद्रान्तरितो भवति, तदाहं तत्रारुह्यात्मकृत्यं करोमि ।

यह सुनकर मैं वहाँ सब साथियोंके साथ पहुँचा और कूदकर उसी भिक्षापात्र पर जा बैठा । उसमें से अच्छे अच्छे खाद्य पदार्थ अपने सेवकोंको देकर बाकी अन्न मैं स्वयं खाया करता और जब सब साथी तृप्त हो जाते, तब मैं अपने घर वापस चला जाता था । इस तरह नित्य मैं वह अन्न खाया करता था । संन्यासी भी अपनी शक्ति के अनुसार उसकी रक्षा करता था । लेकिन जैसेही वह सो जाता, कि मैं खूँटीपर चढ़कर अपना काम करने लग जाता था ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कदाचित्तेन मम रक्षणार्थं महान् यत्नः कृतः । जर्जरवंशश्चैकः समानीतः । तेन सुप्तोऽपि मम भयाद् भिक्षापात्रं ताडयति । अहमप्यभक्षितेऽप्यन्ने प्रहारभयादपसर्पामि । एवं तेन सह सकलां रात्रिं विग्रहपरस्य कालो व्रजति ।

कुछ दिनोंके बाद उसने मेरी रक्षाके लिये बड़ा यत्न किया । वह एक बड़ा-सा बाँस ले आया और उससे सोये हुए ही डरसे भिक्षापात्रको पीटा करता था । मैं भी बिना अन्न खाये ही चोट लगनेके भय से दूर भाग जाया करता था । इस प्रकार सारी रात उसके साथ लड़ाई करनेमें ही बीत जाती थी ।

अथान्यस्मिन्नहनि तस्य मठे बृहत्स्फिङ्नामा परिव्राजकस्तस्य सुहृत्तीर्थयात्राप्रसङ्गेन पान्थः प्राघुर्णिकः समायातः । तं दृष्ट्वा प्रत्युत्थानविधिना सम्भाव्य प्रतिपत्तिपूर्वकमभ्यागतक्रियया नियोजितः ततश्च रात्रावेकत्र कुशसंस्तरे द्वावपि प्रसुप्तौ धर्मकथां कथयितुमारब्धौ ।

इसके बाद एक दिन उसका मित्र 'बृहत्स्फिक्' नामक संन्यासी तीर्थयात्राके निमित्त अतिथि होकर आया । उसे देखकर प्रत्युत्थान (उठकर खड़ा होना) आदि क्रियासे स्वागत करके वह आदरके साथ आतिथ्य-कर्ममें लग गया । इसके अनन्तर वे दोनों कुशकी बनी हुई चटाई पर एक साथ सोये और धार्मिक कथाएँ कहने लगे ।

अथ बृहत्स्फिक्कथागोष्ठीषु स ताम्रचूडो मूषक-

१ बृहन्तौ महन्तौ स्फिचौ नितम्बौ यस्य सः । २ अतिथिः । ३सम्मानपुरःसरम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रासार्थं व्याक्षिप्तमना जर्जरवंशेन भिक्षापात्रं ताडयंस्तस्य शून्यं प्रतिवचनं प्रयच्छति । तन्मयो न किञ्चिदुदाहरति । अथासावभ्यागतः परं कोपमुपागतस्तमुवाच—भोस्ताम्रचूड ! परिज्ञातस्त्वं सम्यङ् न सुहृत् । तेन मया सह साह्लादं न जल्पसि । तद्रात्रावपि त्वदीयं मठं त्यक्त्वान्यत्र मठे यास्यामि । उक्तञ्च—

बृहत्स्फिक्‌के बातचीत करते समय ताम्रचूड़ चूहोंको धमकाने के लिये व्याकुल होकर जर्जर बाँससे भिक्षापात्रको ठोकता हुआ, शून्य-मनसे हुँकारी भरता जाता था, तन्मय होकर कुछ कहता सुनता नहीं था । इसपर वह सन्यासी बहुत क्रुद्ध होकर कहने लगा—'हे ताम्रचूड़ ! मैं जान गया, तुम अच्छे मित्र नहीं हो । इसीसे मेरे साथ प्रसन्नतापूर्वक बातचीत नहीं करते । इसलिये रात्रिका समय होनेपर भी मैं तुम्हारा मठ छोड़कर दूसरी जगह चला जाऊँगा । कहा भी है—

"एह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं कस्माच्चिराद् दृश्यसे
कावार्ता ह्यतिदुर्बलोऽसि कुशलं प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात् ।
एवं ये समुपागतान्प्रणयिनः प्रह्लादयन्त्यादरा-
त्तेषां युक्तमशङ्कितेन मनसा हर्म्याणि गन्तुं सदा ॥

"आइये ! आइये !! इस आसनपर बैठिये, बहुत दिनोंपर क्यों दिखाई दिये ? आपके दर्शनसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।" जो मित्र इस तरह अपने यहाँ आए हुए मित्रों का आदर करते हैं, उसके घरपर निःशंक होकर चले जाना ठीक है ॥ ६७ ॥

गृही यत्रागतं दृष्ट्वा दिशो वीक्षेत वाप्यधः ।
तत्र ये सदने यान्ति ते शृङ्गरहिता वृषाः ॥ ६८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो गृहस्थ अपने यहाँ आये हुए अतिथिको देखकर इधर उधर देखने लग जाय, या नीचेकी ओर ताकने लग जाय, उसके घरपर जो लोग जाते हैं, वे बिना सींगके बैल हैं, अर्थात् पशु तुल्य हैं ॥ ६८ ॥

नाभ्युत्थानक्रिया यत्र नालापा मधुराक्षराः ।
गुणदोषकथा नैव तत्र हर्म्ये न गम्यते ॥ ६९ ॥

जहाँ जाने पर न अभ्युत्थान (उठना) आदि क्रियाएँ हों, न मीठी-मीठी बातें हों और न गुण–दोष की चर्चा ही हो, ऐसे घरपर कदापि नहीं जाना चाहिये ॥ ६९ ॥

तदेकमठप्राप्त्यापि त्वं गर्वितः । त्यक्तः सुहृत्स्नेहः नैतद्वेत्सि यत्त्वया मठाश्रयव्याजेन नरकोपार्जनं कृतम् । उक्तञ्च—

सो तुम केवल एक मठ पाकर अभिमानी हो गये हो और मित्रका स्नेह भी त्याग दिये हो । क्या यह तुम नहीं जानते कि मठके बहाने तुमने नरक उपार्जन किया है ? कहा भी है:—

नरकाय मतिस्ते चेत्पौरोहित्यं समाचर ।
वर्षं यावत्किमन्येन मठचिन्तां दिनत्रयम् ॥ ७० ॥

यदि नरकमें जानेकी तुम्हारी इच्छा हो तो सालभर पुरोहितीका काम करो । अथवा और कार्यसे क्या ? केवल तीन दिन तक मंदिरके पुजारी बन जाओ ॥ ७० ॥

तन्मूर्ख ! शोचितव्यस्त्वं गर्वं गतः । तदहं त्वदीयं मठं परित्यज्य यास्यामि ।'

तो अरे मूर्ख ! इस तरह अभिमानी होकर तू चिन्ताका पात्र है । इसलिये मैं तेरा मठ छोड़कर चला जाऊँगा ।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तच्छ्रुत्वा भयत्रस्तमनास्ताम्रचूडस्तमुवाच—'भो भगवन्! मैवं वद। न त्वत्समोऽन्यो मम सुहृत्कश्चिदस्ति। परं तच्छ्रूयतां गोष्ठीशैथिल्यकारणम्। एष दुरात्मा मूषकः प्रोन्नतस्थाने धृतमपि भिक्षापात्रमुत्प्लुत्यारोहति। भिक्षाशेषं च तत्रस्थं भक्षयति। तद्भावादेव मठे मार्जनक्रियापि न भवति। तन्मूषकत्रासार्थमेतेन वंशेन भिक्षापात्रं मुहुर्मुहुस्ताडयामि, नान्यत्कारणमिति। अपरमेतत्कुतूहलं पश्यास्य दुरात्मनो यन्मार्जारमर्कटादयोऽपितिरस्कृता अस्योत्पतनेन।'

'यह सुनकर भयसे घबड़ाये हुए ताम्रचूड़ने उससे कहा—"भगवन्! ऐसा मत कहो, तुम्हारे जैसा मेरा कोई भी मित्र नहीं है। बातोंमें जो शिथिलता आती है, उसका कारण भी सुन लो। यह दुष्ट चूहा खूब ऊँची जगह रखे हुए भिक्षापात्रपर भी कूदकर चढ़ जाता है और भिक्षासे बचा हुआ अन्न खा जाता है। उस अन्नके अभावसे मठमें झाड़ू वगैरह भी नहीं लग पाता। इस लिये मैं चूहोंके डराने वास्ते ही बारबार भिक्षापात्रको ठोकता रहता हूँ। इसे छोड़कर और कोई कारण नहीं है और आश्चर्य तो देखो! इस दुष्टने कूदनेमें बिल्ली और वानरको भी मात कर दिया है!

बृहत्स्फिगाह—'अथ ज्ञायते तस्य बिलं कस्मिंश्चित्प्रदेशे?' ताम्रचूड आह—'भगवन्! न वेद्मि

१ तस्य मूषिकस्य भावाद् विद्यमानत्वादेवेत्यर्थः। तदभावादेवेति मुद्रू पाठान्तरम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्यक् ।' स आह—'नूनं निधानस्योपरि तस्य बिलम् । निधानोष्मणा प्रकूर्दते । उक्तञ्च—

बृहत्स्फिक्ने कहा—'यह तो बताओ कि उसका बिल कहाँ है' ? ताम्रचूड़ने कहा-'भगवन् ! मैं अच्छी तरह नहीं जानता।' उसने कहा-'अवश्य ही इसका बिल किसी खजानेपर है, उसीकी गर्मीसे यह इस तरह कूदता है । कहा भी है—

ऊष्मापि वित्तजो वृद्धिं तेजो नयति देहिनाम् ।
किं पुनस्तस्य सम्भोगस्त्यागकर्मसमन्वितः ॥७१॥

धनकी गर्मी भी प्राणियोंके तेजकी वृद्धि करती है । फिर यदि दानपूर्वक उसका उपभोग किया जाय तो कहना ही क्या है ? ॥ ७१ ॥

तथा च । और भी—

नाकस्माच्छाण्डिली मातर्विक्रीणाति तिलैस्तिलान् ।
लुञ्चितानितरैर्येन हेतुरत्र भविष्यति' ॥ ७२ ॥

हे मातः ! बिना किसी कारणके यह शाण्डिली (ब्राह्मणी) धोये हुए तिलोंको बिना धोये तिलसे एकाएक नहीं बदल सकती ? इसमें कुछ कारण अवश्य ही होगा।' ॥ ७२ ॥

ताम्रचूड़ आह—'कथमेतत् ।' स आह—

ताम्रचूड़ने कहा—'यह कैसे ?' उसने कहा—

१–भूगर्भस्थितस्य धनस्येत्यर्थः । २–प्रकूर्दते प्रकर्षेण उल्लम्पति इत्यर्थः । इसी 'कूर्द' धातुसे कूर्दति (कूदता) बनता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथा २

'यदाहं कस्मिंश्चित्स्थाने प्रावृट्काले व्रतग्रहण-निमित्तं कश्चिद् ब्राह्मणं वासार्थं प्रार्थितवान् । ततश्च तद्वचनात्तेनापि शुश्रूषितः सुखेन देवार्चन-परस्तिष्ठामि ।

जब मैंने किसी स्थानमें वर्षाकालीन (चतुर्मासा) व्रत ग्रहण करनेके लिये अपने निवासार्थ किसी ब्राह्मणसे स्थान माँगा, तब उस प्रार्थनासे मैं ब्राह्मणद्वारा सेवित होकर सुखपूर्वक देवार्चन करता हुआ रहने लगा ।

अथान्यस्मिन्नहनि प्रत्यूषे प्रबुद्धोऽहं ब्राह्मणब्राह्मणीसंवादे दत्तावधानः शृणोमि । तत्र ब्राह्मण आह—'ब्राह्मणि ! प्रभाते दक्षिणायनसंक्रान्तिरनन्त-दानफलदा भविष्यति । तदहं प्रतिग्रहार्थं ग्रामा-न्तरं यास्यामि । त्वया ब्राह्मणस्यैकस्य भगवतः सूर्यस्योद्देशेन किञ्चिद्भोजनं दातव्यम्' इति ।

किसी दिन प्रातःकाल सोकर उठा, तो मैंने देखा कि ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनों आपसमें बातचीत कर रहे हैं । मैं भी ध्यानसे उनकी बातें सुनने लगा । ब्राह्मण कह रहा था—'ब्राह्मणि ! सबेरे अनन्त फल देनेवाली दक्षिणायन (कर्क) की 'संक्रान्ति' होगी । इसलिये मैं तो दान लेनेके लिये दूसरे ग्राममें जाऊँगा, तुम एक ब्राह्मणको सूर्य भगवान्के उद्देश्यसे कुछ भोजन दे देना ।'

अथ तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणी परुषतरवचनैस्तं भर्त्स-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यस्मात्ता प्राह—'कुतस्ते दारिद्र्योपहतस्य भोजन-प्राप्तिः ? तत्किं न लज्जसे एवं ब्रुवाणः !! अपि च, न मया तव हस्तलग्नया क्वचिदपि लब्धं सुखम् । न मिष्टान्नस्यास्वादनम्, न च हस्तपादकण्ठादि-भूषणम्' । तच्छ्रुत्वा भयत्रस्तोऽपि विप्रो मन्दं मन्दं प्राह—'ब्राह्मणि ! नैतद्युज्यते वक्तुम् । उक्तञ्च—

यह सुनकर ब्राह्मणी कठोर वचनों द्वारा उसे डाँटती हुई कहने लगी—"तुम्हारे जैसे दरिद्रके यहाँ किसीको भोजनकी प्राप्ति कहाँसे हो सकती है ? ऐसा कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? और देखो, जबसे मैं तुम्हारे यहाँ आई, तबसे कभी भी सुख नहीं पाया । न तो अच्छे अच्छे पदार्थ खानेको मिले और न हाथ–पैर तथा गले–आदिके गहने ही पहननेको मिले ! यह सुन, ब्राह्मण भयभीत होकर धीरे धीरे कहने लगा—'ब्राह्मणि ! ऐसा कहना ठीक नहीं है । कहा भी है—

ग्रासादपि तदर्धं च कस्मान्नो दीयतेऽर्थिषु ?
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥७३॥

यदि तुम्हारे पास एकही ग्रास[1] है तो वही या उसका आधा ग्रास ही सही, याचकोंको क्यों नहीं दे देती ? क्योंकि इच्छा-नुसार धन कब किसको होगा ? ॥ ७३ ॥

ईश्वरा भूरिदानेन यल्लभन्ते फलं किल ।
दरिद्रस्तच्च काकिण्या[2] प्राप्नुयादिति नः श्रुतिः ७४

१–ग्रासः=कवलः । 'ग्रासस्तु कवलःपुमान' इत्यमरः ।
२–काकिण्या वराटकानां विंशत्या इत्यर्थः । यथा–
"वराटकानां दशकद्वयं यत्सा काकिणी" इति लीलावत्याम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजालोग भूमि-दान करनेसे जो फल पाते हैं, वही फल कोई दरिद्र व्यक्ति एक काकिणी (बीस कौड़ी) अर्थात् एक दोकड़ा दान देकर भी पा लेता है, यह हमने सुना है ॥ ७४ ॥

दाता लघुरपि सेव्यो भवति न कृपणो महानपि समृद्ध्या । कूपोऽन्तः स्वादुजलः प्रीत्यै लोकस्य न समुद्रः ॥ ७५ ॥

दाता यदि छोटा हो तो भी उसकी सेवा करनी चाहिये; किन्तु धनाढ्य यदि कृपण हो तो उसकी सेवा न करे। ठीक है ! जिसमें मीठा पानी रहता है, उस कूएँ से सब लोग प्रसन्न रहते हैं और समुद्रसे कोई प्रसन्न नहीं होता ॥ ७५ ॥ 'आर्य्यावृत्त' ।

तथा च । और भी—

अकृतत्यागमहिम्ना मिथ्या किं राजराजशब्देन ।
गोप्तारं न निधीनां कथयन्ति महेश्वरं विबुधाः ॥

जिसने त्यागकी महिमा नहीं समझी, ऐसे राज, राज (कुबेर) शब्दसे क्या लाभ ? खजानेके रक्षक (जमादार) को बुद्धिमान् लोग महाराज नहीं कहा करते ! ॥ ७६ ॥ आर्यावृत्त ।

अपि च । और भी—

सदा दानपरिक्षीणः शस्त एव करीश्वरः ।
अदानः पीनगात्रोऽपि निन्द्य एव हि गर्दभः ॥ ७७ ॥

सर्वदा दान (मदजल अथवा धनदान) से कृश हाथियों का राजा (और राजा) प्रशंसाका ही पात्र है, किन्तु दान रहित (बिना मद अथवा धनत्याग के) मोटे-ताजे शरीर वाला

१—'महाराजः । कुवेरस्त्र्यम्बकसखः राजराजो धनाधिपः, इत्यमरः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गदहा भी निंद्य ही माना जाता है ॥ ७७ ॥

सुशीलोऽपि सुवृत्तोऽपि यात्यदानादधो घटः ।
पुनः कुब्जापि काणापि दानादुपरि कर्कटी ॥७८॥

जिस प्रकार सुशील (अच्छे कामों में आने वाला) और सुन्दर (वतु लाकार) होनेपर भी घड़ा बिना दान (जल) के नीचे की ओर जाता है, उसी प्रकार सुशील और सदाचारी पुरुष भी बिना दानके नीचे जाता है । अर्थात् वह नीच समझा जाता है । और देखिये, जिस प्रकार टेढ़ी और कानी ककड़ी भी दान (राहियोंको जल देने) के कारण ऊपर जाती है, उसी प्रकार काना कुवड़ा भी दान करनेसे ऊपर जाता है, अर्थात् उच्च पद पाता है ॥ ७८ ॥

यच्छञ्जलमपि जलदो वल्लभतामेति सकललोकस्य ।
नित्यं प्रसारितकरो मित्रोऽपि न वीक्षितुं शक्यः ॥

जल देने के कारण ही मेघ समस्त संसार का प्रिय होता है, परन्तु नित्य ही कर (किरण) फैलाये हुए मित्र (सूर्य भगवान्) को भी लोग नहीं देख सकते ! ॥ ७९ ॥ 'आर्य्यावृत्त' ।

एवं ज्ञात्वा दारिद्र्याभिभूतैरपि स्वल्पात्स्वल्पतरं काले पात्रे च देयम् । उक्तञ्च—

ऐसा समझकर दरिद्र को भी थोड़ा वहुत पुण्यकाल में दान देते रहना चाहिये । कहा भी है—

सत्पात्रं महती श्रद्धा देशे काले यथोचिते ।
यद्दीयते विवेकज्ञैस्तदानन्त्याय कल्पते ॥ ८० ॥

१—'तदानन्त्याय'—इत्यपि पाठो दृश्यते; किन्तु मन्मते 'तदनन्ताय' इति साधु पाठः ।—द्विवेन्द्रस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि सत्पात्र पुरुष मिलें और मनमें उत्कृष्ट श्रद्धा हो तो यथोचित देश (तीर्थ) में, काल (ग्रहण आदि पर्वों) में विचारवान् पुरुषोंका दिया हुआ दान अनन्त (अक्षय) फलको देनेवाला होता है ॥ ८० ॥

तथा च । और भी—

अतितृष्णा न कर्त्तव्या तृष्णां नैव परित्यजेत् ।
अतितृष्णाभिभूतस्य शिखा भवति मस्तके ॥ ८१॥

अधिक लालच नहीं करना चाहिये और लालचको एक दम छोड़ना भी नहीं चाहिये, क्योंकि अधिक लालच करनेवालेके सिरपर शिखा हो जाती है अर्थात् वह कलङ्कित हो जाता है ॥ ८१ ॥

ब्राह्मण्याह-'कथमेतत् ?' स आह—

ब्राह्मणीने कहा—'यह कैसे ?' उसने कहा—

१—'देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः' (मनु०)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथा ३

अस्ति कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे कश्चित्पुलिन्दः[1]। स च कदाचित् पापर्द्धिं कर्तुं वनं प्रति प्रस्थितः। अथ तेन प्रसर्पता महानञ्जनपर्वतशिखराकारः[2] क्रोडः[3] समासादितः। तं दृष्ट्वा कर्णान्ताकृष्टनिशितसायकेन समाहतः। तेनापि कोपाऽऽविष्टेन चेतसा बालेन्दु-द्युतिना दंष्ट्राग्रेण पाटितोदरः पुलिन्दो गतासुर्भूतलेऽपतत्। अथ लुब्धकं व्यापाद्य शूकरोऽपि शरप्रहारवेदनया पञ्चत्वं गतः।

किसी वनके पास एक बहेलिया रहता था। वह पापी किसी समय शिकार करनेके लिए उस वनमें गया। मार्गमें जाते समय उसने कज्जल पर्वतके शिखर-सदृश एक बड़ा भारी शूकर (सूअर) पाया। उसे देख, कान तक खींचकर तेज बाण मारा। शूकरने भी क्रुद्ध होकर बालचन्द्र (द्वितीयाके चाँद) की तरह अपने दाँतोंके अग्रभागसे बहेलियेका पेट फाड़ डाला। वह मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। इसके बाद बहेलियाको मारकर शूअर भी उस बाणकी व्यथासे वहीं मर गया।

एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदासन्नमृत्युः शृगाल इतस्ततो निराहारतया पीडितः परिभ्रमंस्तं प्रदेशमा-

१ म्लेच्छजातिभवः। 'भेदाः किरातशबर पुलिन्दा म्लेच्छजातयः।' इत्यमरः। २ कज्जलपर्वतः नीलगिरित्यर्थः। ३ क्रोडः शूकरः। वाराहः शूकरो घृष्टिः कोलः पोत्री किरिः किटिः। दंष्ट्री घोणीस्तब्धरोमा क्रोडो भूदार इत्यपि' इत्यमरः। 'क्रोडः शनौ शूकरे वा' इति मेदिनी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जगाम । यावद्वराहपुलिन्दौ द्वावपि पश्यति ताव-त्प्रहृष्टो व्यचिन्तयत्–'भोः! सानुकूलो मे विधिः। तेनैतदप्यचिन्तितं भोजनमुपस्थितम् । अथवा साध्विदमुच्यते—

इसी बीच निकट मृत्युवाला एक सियार[1] भोजनके बिना दुःखित होकर इधर उधर घूमता हुआ उस स्थानपर आया और ज्योहीं शूकर तथा व्याधेको देखा, त्योहीं आनन्दित होकर विचार करने लगा–'अहो! विधाता आज हमपर प्रसन्न हैं। इसीसे यह अचिन्तित भोजन प्राप्त हुआ! अथवा यह ठीक ही कहा गया है—

अकृतेऽप्युद्यमे पुंसामन्यजन्मकृतं फलम्।
शुभाशुभं समभ्येति विधिना सन्नियोजितम् ८२

उद्योग न करनेपर भी मनुष्योंको दूसरे जन्मका किया हुआ शुभाशुभ फल दैव (भाग्य) के द्वारा मिलता है ॥ ८२ ॥

तथा च। और भी—

यस्मिन्देशे च काले वयसा यादृशेन च।
कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते ॥ ८३ ॥

जिस देशमें, जिस समयमें और जिस अवस्थामें शुभाशुभ कर्म मनुष्य करता है, वह उसे उसी प्रकारसे प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥

तदहं तथा भक्षयामि, यथा बहून्यहानि मे प्राणयात्रा भवति । तत्तावदेनं स्नायुपाशं धनुष्कोटिगतं भक्षयामि । उक्तञ्च—

१–चापस्य धनुषः चटिता खण्डिता या कोटिः अग्रभागः ताम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सो मैं इसे इस प्रकार भोजन करूँ कि बहुत दिनों तक काम चले। इसलिये पहले धनुषमें लगी हुई ताँत (चमड़ेकी रस्सी) को ही खाऊँ । कहा भी है—

शनैः शनैश्च भोक्तव्यं स्वयं वित्तमुपार्जितम् ।
रसायनमिव प्राज्ञैर्हेलया न कदाचन ॥ ८४ ॥

चतुर मनुष्यको अपने हाथसे कमाया हुआ धन धीरे २ इस प्रकार खाना चाहिये, जिस प्रकार ❀ 'रसायन' खाया जाता है। कभी शीघ्रता नहीं करनी चाहिये, अर्थात् एकही बार उसे न उड़ा जाना चाहिये ।। ८४ ॥

इत्येवं मनसा निश्चित्य चापचटितकोटिं मुख मध्ये प्रक्षिप्य स्नायुं भक्षितुं प्रवृत्तः ततश्च त्रुटिते पाशे तालुदेशं विदार्य चापकोटिर्मस्तकमध्येन निष्क्रान्ता। सोऽपि तद्वेदनया तत्क्षणान्मृतः अतोऽहं ब्रवीमि–'अतितृष्णा न कर्तव्या'...इति। स पुनरप्याह–'ब्राह्मणि, न श्रुतं भवत्या ?—

इस प्रकार मनमें सोचकर, चढ़े हुए धनुषके अग्रभागको मुखमें लेकर, वह चामकी रस्सीको खानेके लिये ज्योंहीं प्रस्तुत हुआ, त्योंही ताँतके टूटनेसे धनुषका अग्रभाग उसके तालुको छेदकर बीच मस्तकसे पार हो गया। वह सियार उसी समय

❀—बुढ़ापा एव रोगोंको जीतनेवाले रस-भस्म अमूल्य आदि औषधोंको 'रसायन' कहते हैं। भावप्रकाश में लिखा है—

"दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः ।
देहेन्द्रियबलं कान्तिं नरो विन्देद्रसायनात् ॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस पीड़ासे मर गया। इसलिये मैं कहता हूँ कि 'अति तृष्णा न कर्त्तव्या,...। उसने फिर भी कहा—हे ब्राह्मणि! क्या तुमने नहीं सुना है १—

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः' ॥ ८५॥

आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँच वस्तुएँ तभी बना दी जाती हैं, जब जीव माताके गर्भमें रहता है ॥ ८५ ॥

अथैवं सा तेन प्रबोधिता ब्राह्मण्याह—'यद्येवं तदस्ति मे गृहे स्तोकस्तिलराशिः। तत्तिलांल्लु-ञ्चित्वा तिलचूर्णेन ब्राह्मणं भोजयिष्यामि' इति। ततस्तद्वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणो ग्रामं गतः। सापि तिलानुष्णोदकेन सम्मर्द्य कुट्टित्वा सूर्यातपे दत्तवती

इसके बाद उसके इस प्रकार समझाने पर वह ब्राह्मणी कहने लगी--'यदि ऐसी बात है तो मेरे घरमें थोड़ा-सा तिल रखा है, उन तिलोंकी भूसी उतार और कूटकर उसीके चूर्णसे ब्राह्मण-भोजन कराऊँगी। उसकी बात सुनकर ब्राह्मण दूसरे गाँवमें चला गया। ब्राह्मणीने भी उन तिलोंको गर्म पानीसे धोया और कूटकर घाममें सुखा दिया।

अत्रान्तरे तस्या गृहकर्मव्यग्रायास्तिलानां मध्ये कश्चित्सारमेयो मूत्रोत्सर्गं चकार। तं दृष्ट्वा सा चिन्तितवती—'अहो! नैपुण्यं पश्य पराङ्मुखीभूतस्य

१–'पञ्चैतान्यपि' इति पाठान्तरम्।
२–लुञ्चित्वा कण्डयित्वा त्वचोऽपनीयेत्यर्थः। ३–कुक्कुरः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विधेः, यदेते तिला अभोज्याः कृताः। तदहमेता-न्समादाय कस्यचिद् गृहं गत्वा लुञ्चितैरलुञ्चितानानयामि। सर्वोऽपि जनोऽनेन विधिना। प्रदास्यति'इति

इसके बाद वह अपने घरेलू कामोंमें लग गयी। इसी बीच किसी कुत्तेने आकर उन तिलोंपर पेशाब कर दिया। उसे देखकर वह सोचने लगी—"अहो! अपनेसे प्रतिकूल विधाताकी करतूत तो देखो! इन तिलोंको भी अखाद्य (अपवित्र) बना दिया। इसलिये इन तिलोंको लेकर किसीके घर जाऊँ और इन कूटे हुए तिलोंको देकर बिना कुटे हुए तिल ले आऊँ। इस उपायसे सभी मनुष्य दे सकते हैं।

अथ यस्मिन् गृहेऽहं भिक्षार्थं प्रविष्टस्तत्र गृहे साऽपि तिलानादाय प्रविष्टा विक्रयं कर्तुम्। आह च—'गृह्णातु कश्चिदलुञ्चितैर्लुञ्चितांस्तिलान्।'

इसके अनन्तर मैं जिस घरमें भिक्षा माँगने गया, वहीं वह ब्राह्मणी भी उन तिलों को बेचनेके लिये जा पहुँची और कहने लगी—'कोई मेरे धुले हुए तिलोंसे बिना धुले हुए तिल बदल लेवे।'

अथ तद्गृहगृहिणी गृहं प्रविष्टा यावदलुञ्चितै-र्लुञ्चितान्गृह्णाति, तावदस्याः पुत्रेण कामन्दकीयशास्त्रं दृष्ट्वा व्याहृतम्—'मातः! अग्राह्याः खल्विमे तिलाः। नास्या अलुञ्चितैर्लुञ्चिता ग्राह्याः। कारणं किञ्चि-द्भविष्यति। तेनैषाऽलुञ्चितैर्लुञ्चितान्प्रयच्छति।' तच्छ्रुत्वा तया परित्यक्तास्ते तिलाः। अतोऽहं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रवीमि–'नाकस्माच्छाण्डिली मातः'...इति ।

तत्पश्चात् उस घरकी मालकिन बिना धुले तिल देकर उन तिलोंको ले ही रही थी कि उसके लड़केने 'का न्दकी' नामक नीतिशास्त्रको देखकर कहा–माँ ! ये तिल लेने योग्य नहीं हैं, इनके धोये तिलोंसे से बिना धोये तिलोंको मत दो । इसमें अवश्य ही कोई कारण है, जिससे यह धोये हुए तिलोंसे बिना धोये तिल बदल रही है, यह सुनकर उसकी माताने उन तिलोंका परित्याग कर दिया । इसीलिये मैं कहता हूँ कि "नाकस्याच्छाण्डिली मातः....."इत्यादि ।

एतदुक्त्वा स भूयोऽपि प्राह—'अथ ज्ञायते तस्य क्रमणमार्गः ? ताम्रचूड़ आह—'भगवन् ! ज्ञायते । यत एकाकी न समागच्छति; किंत्वसंख्ययूथपरिवृतः पश्यतो मे परिभ्रमन्नितस्ततः सर्वजनेन सहागच्छति याति च ।'

यह कहकर उसने फिर कहा—'तो तुम उस चूहेके कूदकर चढ़नेका रास्ता जानते हो ? ताम्रचूड़ने कहा–भगवन् ! जानता तो हूँ, किन्तु वह अकेला नहीं आता । बहुतेरे साथियोंसे घिरा हुआ वह मेरे सामने आता और इधर–उधर घूमकर वापस चला जाता है ।

अभ्यागत आह–'अस्ति किंचित्खनित्रकम् ?' स आह—'बाढमस्ति । एषा सर्वलोहमयी स्वहस्तिका ।' अभ्यागत आह—'तर्हि प्रत्यूषे त्वया

१–'कामन्दकीय-नीतिसार' का दसवाँ अध्याय देखिये । यह ग्रन्थ अप्राप्य सा हो रहा है । २–कुदारी (फरसा) इति भाषायाम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मया सह स्थातव्यम्, येन द्वावपि जनचरणमलिनायां भूमौ तत्पदानुसारेण गच्छावः ।'

अभ्यागतने कहा--'तुम्हारे पास कोई खोदनेकी वस्तु है ?' उसने कहा—'हाँ, यह एकदम लोहेका बना हुआ फरसा है।' अभ्यागतने कहा—'तो सवेरे तुम मेरे साथ ही रहना, जिससे हम दोनों, लोगोंके चलने-फिरनेसे मलिन रास्तेमें उसके पैरोंके चिह्न देखते हुए पीछे-पीछे चलें।'

मयापि तद्वचनमाकर्ण्य चिन्तितम्—'अहो ! विनष्टोऽस्मि, यतोऽस्य साभिप्रायवचांसि श्रूयन्ते। नूनं यथा निधानं ज्ञातं तथा दुर्गमप्यस्माकं ज्ञास्यति। एतदभिप्रायादेव ज्ञायते । उक्तञ्च—

उसकी बातें सुनकर मैंने भी सोचा—'अहो ! मैं नष्ट हो गया ! क्योंकि मैं इसके सार-गर्भित वाक्यको सुन रहा हूँ। इसने निश्चयही मेरे खजानेको जैसे जान लिया है, वैसेही वह मेरा किला भी अवश्य जान लेगा। यह इसके अभिप्रायसे ही मालूम पड़ता है । कहा भी है:--

सकृदपि दृष्ट्वा पुरुषं विबुधा जानन्ति सारतां तस्य
हस्ततुलयापि निपुणाः पलप्रमाणं विजानन्ति॥८६

समझदार लोग केवल एकबार किसी पुरुषको देखकर उसका तत्व जान लेते हैं, क्योंकि चतुर लोग किसी पदार्थ को हाथमें लेते ही उसका वजन जान जाते हैं ॥ ८६ ॥ 'आर्या'।

१– हिन्दीमें 'मलीन' या 'मलिन' दोनों प्रयोग मिलता है, पर दूसरा पाठही शुद्ध प्रयोग है । यथा –

मलीमसं तु मलिनं कच्चरं मलदूषितम्' इत्यमरः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाञ्छैव सूचयति पूर्वतरं भविष्यं
पुंसां यदन्यतनुजं त्वशुभं शुभं वा ।
विज्ञायते शिशुरजातकलापचिह्नः
प्रत्युद्गतैरपसरन्सरसः कलापी' ॥ ८७ ॥

मनुष्योंका भूत या भविष्य, जो देहान्तरसे सम्बन्ध रखने वाला शुभाशुभ कर्म होता है, उसे उस मनुष्यकी मानसिक प्रवृत्ति ही सूचित कर देती है। जैसे मयूरके बच्चे को, जब उसके पंख नहीं निकले रहते, तभी उसकी विचित्र चालसे लोग जान लेते हैं कि यह मोरका बच्चा है॥८७॥ यह 'वसन्ततिलका'।

ततोऽहं भयत्रस्तमनाः सपरिवारो दुर्गमार्गं परित्यज्यान्यमार्गेण गन्तुं प्रवृत्तः। सपरिजनो यावदग्रतो गच्छामि तावत्सम्मुखो बृहत्कायो मार्जारः समायाति। स च मूषकवृन्दमवलोक्य तन्मध्ये सहसोत्पपात। अथ ते मूषका मां कुमार्गगामिनमवलोक्य गर्हयन्तो हतशेषा रुधिरप्लावितवसुन्धरास्तमेव दुर्गं प्रविष्टाः। अथवा साध्विदमुच्यते—

इसके बाद मैं घबड़ाया हुआ, अपने किलाके मार्गको छोड़कर एक दूसरे मार्गसे चलनेपर उद्यत हुआ। वह अपने परिवारके साथ चला ही था कि एक बड़ा भारी बिलार आ पहुँचा। वह चूहोंके यूथको देखकर सहसा उनके बीचमें कूद पड़ा (बहुतोंको तो साफ कर गया!) वे चूहे मुझे दूषित मार्गसे जाते देख, मेरी निन्दा करते और अपने खूनसे पृथिवीको भिगोते हुए मेरे किलेमें घुस गये। अथवा किसीने ठीक ही कहा है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छित्त्वा पाशमपास्यकूटरचनां भङ्क्त्वा बलाद्वागुरां
पर्यन्ताग्निशिखाकलापजटिलान्निर्गत्य दूरं वनात् ।
व्याधानां शरगोचरादपि जवेनोत्पत्य धावन्मृगः
कूपान्तः पतितः करोतु विधुरे किं वा विधौ पौरुषम्?

व्याधके फैलाये हुए जालसे अपनेको छुड़ाकर, मृगोंको फँसानेके लिये एक खास बन्धन (यंत्र विशेष) को तोड़कर, चारों ओर लगी हुई आगकी लपटोंवाले बनको लाँघकर, बहेलियोंके वाणके लक्ष्यसे वेगपूर्वक भागता हुआ भी हिरण एक कुएँमें जा गिरा । भाग्यके प्रतिकूल हो जानेपर पुरुषार्थ कर ही क्या सकता है ? ॥ ८८ ॥ 'शार्दूलविक्रीडितवृत्त' ।

अथाहमेकोऽन्यत्र गतः । शेषा मूढतया तत्रैव दुर्गे प्रविष्टाः अत्रान्तरे स दुष्टपरिव्राजको रुधिर-बिन्दुचर्चितां भूमिमवलोक्य तेनैव दुर्गमार्गेणाग-त्योपस्थितः । ततश्च स्वहस्तिकया खनितुमारब्धः ।

इसके बाद मैं अकेला हो एक दूसरे स्थानको चला गया । बाकी अपनी मूर्खतावश उसी दुर्गमें घुस गये । इसी बीच वह दुष्ट संन्यासी रुधिर-बिन्दुसे भींगी हुई भूमिको देखकर उसी दुर्ग—मार्गसे चलता हुआ किलेमें आ पहुँचा और यहाँ आकर अपने फरसेसे उसे खोदने लगा ।

अथ तेन खनता प्राप्तं तन्निधानं, यस्योपरि सदैवाहं कृतवसतिर्यस्योष्मणा महादुर्गमपि गच्छा-मि । ततो हृष्टमनास्ताम्रचूडमिदमूचेऽभ्यागतः-भो भगवन् ! इदानीं स्वपिहि निःशङ्कः । अस्यो-ष्मणा मूषकस्ते जागरकं सम्पादयति ।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खोदते खोदते उसने मेरा वह खजाना पा लिया, जिसके ऊपर मैं सर्वदा रहा करता था और जिसकी गर्मीसे मैं बड़े बड़े दुर्गम स्थानोंमें भी पहुँच जाता था। फिर प्रसन्न मनसे उस अभ्यागतने ताम्रचूड़से कहा—'भगवन् ! अब आप निश्चिन्त होकर सोवें । इसी खजानेकी गर्मीसे वह चूहा आपको जगाया करता था ।'

एवमुक्त्वा निधानमादाय मठाभिमुखं प्रस्थितौ द्वावपि । अहमपि यावन्निधानरहितं स्थानमागच्छामि, तावदरमणीयमुद्वेगकारकं तत्स्थानं वीक्षितुमपि न शक्नोमि । अचिन्तयश्च—'किं करोमि ? क्व गच्छामि ? कथं मे स्यान्मनसः प्रशान्तिः? एवं चिन्तयतो महाकष्टेन स दिवसो व्यतिक्रान्तः ।'

ऐसा कह और खजानेको लेकर वे दोनों मठकी ओर चले गये । मैं भी जब उस निधान-रहित स्थानपर पहुँचा तो वह मुझे बड़ा ही उदास तथा उद्वेगकारी मालूम हुआ । यहाँ तक कि मैं उसे देख भी नहीं सकता था। मैं सोचने लगा—"क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? और किस तरह मेरे मनको शान्ति मिले ? इस प्रकार सोचते-सोचते बड़ी कठिनाईसे वह दिन बीता ।,

अथास्तमितेऽर्के सोद्वेगो निरुत्साहस्तस्मिन्मठे सपरिवारः प्रविष्टः । अथास्मत्परिग्रहशब्दमाकर्ण्य ताम्रचूडोऽपि भूयो भिक्षापात्रं जर्जरवंशेन ताडयितुं प्रवृत्तः । अथासावभ्यागतः प्राह—'सखे ! किमद्यापि निःशङ्को न निद्रां गच्छसि ? स आह-भगवन् ! भूयोऽपि समायातः सपरिवारः स दुष्टा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्मा मूषकः । तद्भयाज्जर्जरवंशेन भिक्षापात्रं ताडयामि ।' ततो विहस्याभ्यागतः प्राह—'सखे ! मा भैषीः ।' वित्तेन सह गतोऽस्य कूर्दनोत्साहः । सर्वेषामपि जन्तूनामियमेव स्थितिः । उक्तञ्च—

जब सूर्यास्त होगया तो मैं बड़े उद्वेगके साथ निरुत्साहित होकर अपने साथियों समेत उस मठमें घुसा । मेरे परिजनोंके शब्द सुनकर ताम्रचूड़ फिर उसी जर्जर बाँससे भिक्षापात्रको पीटने लगा । इसपर अभ्यागतने कहा—"मित्र ! आज भी निश्चिन्त होकर तुम क्यों नहीं सोते ?" उसने कहा—'भगवन् ! यह दुष्ट चूहा आज भी अपने परिवारसहित आ पहुँचा है । उसीके डरसे इस फटे बाँससे भिक्षापात्रको ठोंक रहा हूँ" । तब उसने हँसकर कहा—"मित्र ! डरो मत । इस धनके साथ इसके कूदनेका उत्साह भी नष्ट हो गया है । संसारमें सब प्राणियोंकी यही दशा रहती है । कहा भी है—

यदुत्साही सदा मर्त्यः पराभवति यज्जनान् ।
यदुद्धतं वदेद्वाक्यं तत्सर्वं वित्तजं बलम्' ॥ ८६ ॥

मनुष्य जो उत्साही रहता है, दूसरोंको परास्त करता है, और उद्धत वाक्य बोलता है, यह सब धनका ही प्रभाव है ॥

अथाहं तच्छ्रुत्वा कोपाविष्टो भिक्षापात्रमुद्दिश्य विशेषादुत्कूर्दितोऽप्राप्त एव भूमौ निपतितः । तद्दृष्ट्वाऽसौ मे शत्रुर्विहस्य ताम्रचूडमुवाच-'भोः ! पश्य पश्य कौतूहलम् ।' आह च—

यह सुनकर मैं क्रुद्ध हो गया और विशेष शक्तिसे भिक्षापा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊपर कूदकर भी उस पात्र तक न पहुँच सका । अतः पृथ्वीपर गिर पड़ा । यह देखकर मेरे शत्रुने ताम्रचूड़से कहा—'अरे ! देखो, यह तमाशा देखो ।' और कहा—

अर्थेन बलवान्सर्वोऽप्यर्थयुक्तः स पण्डितः ।
पश्यैनं मूषकं व्यर्थं स्वजातेः समतां गतम् ॥६०॥

'सारा संसार धनसे ही बलवान् होता है, जो धनवान् है वही पण्डित है । इस निर्धन चूहेको देखो ! वह भी अपनी जातिके दूसरे चूहोंके स्वभावका-सा हो गया है ॥ ६० ॥

तत् स्वपिहि त्वं गतशङ्कः । यदस्योत्पतनकारणं तदावयोर्हस्तगतं जातम् । अथवा साध्विदमुच्यते-

इसलिये अब तुम निःशङ्क भावसे सोओ; क्योंकि इसके कूदनेका जो कारण था, वह हम दोनोंके हाथ लग गया है । किसीने ठीक ही कहा है—

दंष्ट्राविरहितः सर्पो मदहीनो यथा गजः ।
तथार्थेन विहीनोऽत्र पुरुषो नामधारकः' ॥ ६१ ॥

जिस प्रकार बिना दाँतका साँप और मद-विहीन हाथी (निस्तेज) होता है, उसी तरह धन-रहित पुरुष भी केवल नाममात्रका पुरुष रहता है ॥ ६१ ॥

तच्छ्रुत्वाहं मनसा विचिन्तितवान्—'यतोऽङ्गुलिमात्रमपि कूर्दनशक्तिर्नास्ति, तद्धिगर्थहीनस्य पुरुषस्य जीवितम् ? उक्तञ्च—

यह सुनकर मैंने अपने मनमें सोचा—'यदि एक अंगुल भर भी कूदनकी शक्ति न रही, तो ऐसे अर्थहीन पुरुषके जीवनको धिक्कार है ! कहा भी है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थेन च विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः ।
उच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥

धनहीन एवं अल्प बुद्धिवाले पुरुषकी सब क्रियाएँ वैसे ही नष्ट हो जाती हैं, जैसे गरमीके दिनोंमें छोटी छोटी नदियाँ सूख जाया करती हैं ॥ ६२ ॥

यथा काकयवाः प्रोक्ता यथाऽरण्यभवास्तिलाः ।
नाममात्रा न सिद्धौ हि धनहीनास्तथा नराः ६३

जैसे काकजौ और बनैला तिल नाममात्रके जौ और तिल हैं, उसी तरह धनहीन मनुष्य भी नाममात्रके मनुष्य हैं (कार्यके लिये नहीं) ॥ ६३ ॥

सन्तोऽपि न हि राजन्ते दरिद्रस्येतरे गुणाः ।
आदित्य इव भूतानां श्रीर्गुणानां प्रकाशिनी ॥ ६४॥

दरिद्रके पास दया-शान्तियादि कितने ही अच्छे २ गुण होते हुए भी वे शोभित नहीं होते । किन्तु सूर्य भगवान् जैसे सब वस्तुओंको प्रकाशित करते हैं, उसी तरह सम्पत्ति गुणोंको प्रकाशित करती है ॥ ६४ ॥

न तथा बाध्यते लोके प्रकृत्या निर्धनो जनः ।
यथा द्रव्याणि सम्प्राप्य तैर्विहीनःसुखे स्थितः ६५

स्वाभाविक तौरसे निर्धन मनुष्य उतना दुःखी नहीं होता, जितना धन पाकर सुखी मनुष्य फिर उसके नष्ट हो जानेपर दुःखी होता है ॥ ६५ ॥

शुष्कस्य कीटखातस्य वह्निदग्धस्य सर्वतः ।
तरोरप्यूषरस्थस्य वरं जन्म न चार्थिनः ॥६६॥

१-'दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी' । २-'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बल्कि सूखे तथा कीड़ोंसे खाये हुए, अग्निसे जले और ऊसर भूमिमें स्थित वृक्षका जन्म अच्छा है; किन्तु धनहीन मनुष्यका जीवन अच्छा नहीं ॥ ६६ ॥

शङ्कनीया हि सर्वत्र निष्प्रतापा दरिद्रता ।
उपकर्तुमपि प्राप्तं निःस्वं सन्त्यज्य गच्छति ॥६७॥

प्रभावसे रहित दरिद्रता सब जगह शंकाके योग्य होती है। एक दरिद्र मनुष्य चाहे किसीका उपकार भी करने क्यों न जाय ! किन्तु उसे छोड़कर लोग चल देते हैं ॥ ६७ ॥

उन्नम्योन्नम्य तत्रैव निर्धनानां मनोरथाः ।
हृदयेष्वेव लीयन्ते विधवास्त्रीस्तनाविव ॥ ६८ ॥

दरिद्र मनुष्योंकी अभिलाषाएं विधवा स्त्रीके स्तनकी तरह उठ-उठ कर हृदयमें ही विलीन हो जाती हैं ॥ ६८ ॥

व्यक्तेऽपि वासरे नित्यं दौर्गत्यतमसाऽऽवृतः ।
अग्रतोऽपि स्थितो यस्मान्न केनापीह दृश्यते ॥६९॥

दिन रहते हुए भी दरिद्रता रूपी अन्धकारसे आच्छन्न होनेके कारण दरिद्र मनुष्य सामने खड़ा हुआ भी किसीको दिखाई नहीं देता ॥ ६९ ॥

एवं विलप्याहं भग्नोत्साहस्तन्निधानं गण्डो-पधानीकृतं[1] दृष्ट्वा स्वं दुर्गं प्रभाते गतः । ततश्च मद्-भृत्याः प्रभाते गच्छन्तो मिथो जल्पन्ति—'अहो ! असमर्थोऽयमुदरपूरणेऽस्माकम् । केवलमस्य पृष्ठल-

---

१—गण्डस्य कपोलस्य उपधानीकृतं आधारीकृतम् । गण्डाधःस्थले स्थापयित्वा शयितमित्यर्थः । २—पृष्ठानुयायिनामिति भावः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्नानां विडालादिविपत्तयः । तत्किमनेनाराधितेन ? उक्तञ्च —

इस तरह रो-धोकर और भग्नोत्साह होकर तथा अपनेको उसकी तकियाके नीचे रक्खा हुआ देखकर, सवेरे मैं अपने दुर्गको वापस चला गया । इसके बाद प्रातःकाल हुआ तो मेरे सब अनुचर बाहर जाते हुए आपसमें कहने लगे—'अहो ! यह हिरण्यक हम लोगोंका पेट भरनेमें असमर्थ है । इसके पीछे २ चलनेसे केवल विलार आदिकी विपत्तियाँ हैं । तो फिर इसकी सेवा करनेसे क्या लाभ ? कहा भी है—

यस्सकाशान्न लाभः स्यात्केवलाः स्युर्विपत्तयः ।
स स्वामी दूरतस्त्याज्यो विशेषादनुजीविभिः ॥

जिसके पास किसी प्रकारसे लाभ न होता हो, केवल विपत्ति ही विपत्ति हो तो विशेष करके उसके अनुचरोंको चाहिये कि ऐसे स्वामीको दूरसे ही त्याग दें ॥ १०० ॥

एवं तेषां वचांसि श्रुत्वा स्वदुर्गं प्रविष्टोऽहम् यावन्नो कश्चिन्मम सम्मुखेऽभ्येति तावन्मया चिन्तितम्—'धिगिमां दरिद्रताम् ! अथवा साध्विदमुच्यते-

उनकी यह बातें सुनकर मैं दुर्गमें घुस गया और उनमें से कोई जबतक मेरे सम्मुख नहीं आया था, तब तक मैंने सोचा कि इस दरिद्रताको धिक्कार है ! अथवा किसोने ठीक कहा है—

मृतो दरिद्रः पुरुषो मृतं मैथुनमप्रजम् ।
मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः'॥१०१॥

दरिद्र पुरुष मृतक है, जिससे कोई सन्तान न हो सके—ऐसा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैथुन मरा हुआ है । वेदमार्गसे रहित श्राद्ध मरा हुआ है और बिना दक्षिणाके यज्ञ भी मरा हुआ है (व्यर्थ है) ॥ १०१ ॥

एवं मे चिन्तयतस्ते भृत्या मम शत्रूणां सेवका जाताः । ते च मामेकाकिनं दृष्ट्वा विडम्बनां कुर्वन्ति

मैं इस तरह सोच ही रहा था कि मेरे सेवक शत्रुओंके अनुचर बन गये और मुझे वे अकेला पाकर मेरा तिरस्कार करने लगे ।

अथ मयैकाकिना योगनिद्रां गतेन भूयो विचिन्तितम्—'यत्तस्य कुतपस्विनः समाश्रयं गत्वा तद्गण्डोपधानवर्तिकृतां वित्तपेटां शनैः शनैर्विदार्य तस्य निद्रावशंगतस्य स्वदुर्गे तद्वित्तमानयामि, येन भूयोऽपि मे वित्तप्रभावेणाधिपत्यं पूर्ववद्भविष्यति । उक्तश्च—

इसके बाद अपनी चित्तवृत्तिको एक चित करके मैं फिर सोचने लगा—'उस दुष्ट तपस्वीके आश्रममें जाऊँ और जब वह सो जाय, तब उसके सिरहाने तकिया बनाकर रक्खी हुई अपने धनकी पेटारीको धीरे धीरे काटकर वह धन अपने किलामें ले आऊँ । तब उस धनके प्रभावसे फिर पहलेकी तरह मेरा आधिपत्य हो जायगा । कहा भी है—

व्यथयन्ति परं चेतो मनोरथशतैर्जनाः ।
नानुष्ठानैर्धनैर्हीनाः कुलजा विधवा इव ॥ १०२ ॥

विधवा, किन्तु कुलीन स्त्री जैसे मनही मन सैकड़ों अभिला-

१—विडम्बनां कुर्वन्ति उपहसन्ति,तिरस्कुर्वन्तीत्यर्थः ।

२—कञ्चन उपा स्थिरयितु नेत्रनिमीलनरूपव्यापारं कृतवतेत्यर्थः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षाएँ करके उनको मनहीमें दबा देती है, ठीक उसी तरह धनहीन मनुष्य भी सैकड़ों कामनाएँ करके केवल अपने मनको ही खिन्न करता है, कोई लाभ नहीं उठा सकता ॥ १०२ ॥

दौर्गत्यं देहिनां दुःखमपमानकरं परम्।
येन स्वैरपि मन्यन्ते जीवन्तोऽपि मृता इव १०३॥

दरिद्रता मनुष्योंको बड़ी ही अपमान करनेवाली वस्तु है, जिससे अपने सगे-सम्बन्धी जन भी जीवित प्राणियोंको मृतकके समान समझ लेते हैं ॥ १०३ ॥

दैन्यस्य पात्रतामेति पराभूतेः परं पदम्।
विपदामाश्रयः शश्वद्दौर्गत्यकलुषाकृतः ॥ १०४ ॥

दरिद्रतासे सताया हुआ मनुष्य दीनताका पात्र, पराभवका सर्वश्रेष्ठ स्थान और नाना प्रकारकी विपत्तियोंका स्थान बन जाता है ॥ १०४ ॥

लज्जन्ते बान्धवास्तेन सम्बन्धं गोपयन्ति च।
मित्राण्यमित्रतां यान्ति यस्य न स्युः कपर्दकाः ॥

जिसके पास कौड़ी नहीं होती अर्थात् जो निर्धन है, उससे उसके भाई-बन्धु लजाते हैं। यहाँ तक कि अपने सम्बन्धको भी छिपाते हैं और मित्र भी शत्रु बन जाते हैं ॥ १०५ ॥

मूर्त्तं लाघवमेवैतदपायानामिदं गृहम्।
पर्यायो मरणस्यायं निर्धनत्वं शरीरिणाम् ॥१०६॥

धन-विहीन होना अपमानका मूर्तिमान स्वरूप, विनाशका घर और मरणका पर्यायवाचक शब्द है ॥१०६॥

अजाधूलिरिव त्रस्तैर्मार्जनीरेणुवज्जनैः।
दीपखद्योतछायेव त्यज्यते निर्धनो जनः ॥१०७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्य बकरीके शरीरसे निकली हुई धूलिके समान तथा झाड़ूकी धूलिकी तरह एवं जुगनू की छायाके समान समझ कर निर्धन मनुष्यको त्याग देते हैं ॥१०७॥

शौचावशिष्टयाप्यस्ति किञ्चित्कार्यं क्वचिन्मृदा ।
निर्धनेन जनेनैव न तु किञ्चित्प्रयोजनम् ॥ १०८ ॥

शौचसे बची हुई मिट्टी भी कभी किसी कामसें आ जाती है, किन्तु धनहीन मनुष्यसे कभी कोई काम नहीं होता ॥१०८॥

अधनो दातुकामोऽपि सम्प्राप्तो धनिनां गृहम् ।
मन्यते याचकोऽयं धिग्दारिद्र्यं खलु देहिनाम् ॥

निर्धन मनुष्य धनियोंके यहाँ कुछ देनेके लिये भी यदि पहुँचे तो उसे लोग याचक ही समझ लेते हैं । अत एव मानव जातिकी इस दरिद्रताको धिक्कार है ! ॥ १०९ ॥

अतो वित्तापहारं विदधतो यदि मे मृत्युः स्यात्तथापि शोभनम् । उक्तञ्च—

इस कारण धन चुराते हुए यदि मेरी मृत्यु भी हो जाय तो वह अच्छी ही है । कहा भी है—

स्ववित्तहरणं दृष्ट्वा यो हि रक्षत्यसून्नरः ।
पितरोऽपि न गृह्णन्ति तद्दत्तं सलिलाञ्जलिम् ॥११०॥

अपना धन नष्ट होते देखकर भी जो अपने प्राणोंकी रक्षामें लग जाता है, ऐसे लोगों की दी हुई जलांजलि उनके पितर लोग भी नहीं ग्रहण करते ॥ ११० ॥

तथाच । और भी—

गवार्थे ब्राह्मणार्थे च स्त्रीवित्तहरणे तथा ।
प्राणाँस्त्यजति यो युद्धे तस्य लोकाः सनातनाः ॥

१—असून्=प्राणान् । २ स्वर्गीय इत्यर्थः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गौके लिये, ब्राह्मणके लिये, स्त्री तथा धन नष्ट होते समय और संग्राममें जो मनुष्य अपने प्राणोंका परित्याग करता है, उसे सनातन लोक (स्वर्ग) प्राप्त होता है ॥ १११ ॥

एवं निश्चित्य रात्रौ तत्र गत्वा निद्रावशमुपागतस्य पेटायां मया छिद्रं कृतं यावत्, तावत्प्रबुद्धो दुष्टतापसः । ततश्च जर्जरवंशप्रहारेण शिरसि ताडितः कथंचिदायुःशेषतया[1] निर्गतोऽहऽस्म्, न मृतश्च । उक्तञ्च—

ऐसा निश्चय करके रात्रिके समय मैं वहाँ गया । जब वह सो रहा था, उस समय मैंने उस पेटारीमें छेद किया ही था कि इतनेमें वह दुष्ट तपस्वी जाग गया । उसने अपने जर्जर बाँससे मेरे मस्तकमें प्रहार किया । आयु शेष रहनेके कारण मैं किसी तरह वहाँसे निकल आया, मरा नहीं । कहा भी है—

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो
देवोऽपि[2] तं लंघयितुं न शक्तः ।
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे
यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम् ॥ ११२ ॥

मनुष्य प्राप्तव्य (मिलनेवाला) धन पाता ही है, उसे देवता भी नहीं रोक सकते । इसीसे मैं न शोक करता हूँ और न मुझे आश्चर्य ही है; क्योंकि जो वस्तु मेरी है, वह दूसरे की नहीं हो सकती ! ॥ ११२ ॥ 'उपजातिवृत्त' ।

काककूर्मौ पृच्छतः—'कथमेतत् ?' हिरण्यक आह—

कौआ और कछुएने कहा—"यह कैसे ?" हिरण्यकने कहा—

१—जीवनकालस्य अवशिष्टतया इति भावः । २—'दैवोऽपि' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथा ४

'अस्ति कस्मिंश्चिन्नगरे सागरदत्तो नाम वणिक् । तत्सूनुना रूपकशतेन विक्रीयमाणः पुस्तको गृहीतः। तस्मिंश्च लिखितमस्ति--

किसी नगरमें 'सागरदत्त' नामका एक बनिया रहता है । उसके पुत्रने सौ रुपयेमें बिकती हुई एक पुस्तक खरीदी । उसमें लिखा था—

"प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो
देवोऽपि तं लंघयितुं न शक्तः ।
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे
यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम् ॥"

(इसका अर्थ ऊपर देखिये ।)

तद् दृष्ट्वा सागरदत्तेन तनुजः पृष्टः—'पुत्र ! कियता मूल्येनैष पुस्तको गृहीतः ?' सोऽब्रवीत्— 'रूपकशतेन ।' तच्छ्रुत्वा सागरदत्तोऽब्रवीत्— 'धिङ् मूर्ख ! त्वं लिखितैकश्लोकं रूपकशतेन यद् गृह्णासि, एतया बुद्ध्या कथं द्रव्योपार्जनं करिष्यसि? तदद्यप्रभृति त्वया मे गृहे न प्रवेष्टव्यम् ।'

१-'पुस्तकम्' इति नपुंसके पाठः ।

२-'रूप्यकशतेन' इति साधु पाठः ।

'रूप्यं स्यादाहतस्वर्णरजते' इति विश्वः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह देखकर सागरदत्तने पुत्र से पूछा—'पुत्र ! कितने मूल्य में यह पुस्तक खरीदे हो ?' उसने कहा—"सौ रुपये में"। यह सुनकर सागरदत्त ने कहा—'अरे मूर्ख ! तुझे धिक्कार है ! जो एक लिखे हुए श्लोक वाली पुस्तक को सौ रुपये में खरीदते हो ! तुम इस बुद्धि से किस प्रकार धन उपार्जन करोगे ? "इसलिए आजसे तुम मेरे घरमें प्रवेश मत करो ।'

एवं निर्भर्त्स्य गृहान्निःसारितः । स च तेन निर्वेदेन विप्रकृष्टं[1] देशान्तरं गत्वा किमपि नगरमासाद्यावस्थितः ।

इस तरह धमका कर घरसे निकाल दिया । वह उस दुःखसे दुःखी होकर दूर देशके किसी नगरमें पहुँचा ।

अथ कतिपयदिवसैस्तन्नगरनिवासिना केनचिदसौ पृष्टः—'कुतो भवानागतः ? किं नामधेयो वा' इति । असावब्रवीत्—'प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः ।' अथान्येनापि पृष्टेनानेन तथैवोत्तरं दत्तम् । एवं च तस्य नगरस्य मध्ये 'प्राप्तव्यमर्थ' इति तस्य प्रसिद्धं नाम जातम् ।

इसके बाद कुछ दिनोंमें उस नगरके किसी निवासीने पूछा—'आप कहाँसे आये हैं ? आपका क्या नाम है ? ।' उसने कहा—'प्राप्तव्यमर्थं लभते' इत्यादि। इसके बाद दूसरेके पूछनेपर भी उसने वही उत्तर दिया । इस प्रकार उस नगरमें 'प्राप्तव्यमर्थ" उसका रूढ़ि नाम प्रसिद्ध हो गया ।

१—विप्रकृष्टं दूरम् । 'स्याद्दूरं विप्रकृष्टकम्' इत्यमरः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ *राजकन्या चन्द्रवती नामाभिनवरूपयौवनसम्पन्ना सखीद्वितीयैकस्मिन्महोत्सवदिवसे नगरं निरीक्षमाणास्ति । तत्रैव कश्चिद्राजपुत्रोऽतीव रूपसम्पन्नो मनोरमश्च कथमपि तस्या दृष्टिगोचरे गतः। तद्दर्शनसमकालमेव कुसुमबाणाहतया तया निजसख्यभिहिता—'सखि ! यथा किलानेन सह समागमो भवति तथाद्य त्वया यतितव्यम् ।'

इसके बाद नवयुवती राजकुमारी 'चन्द्रवती' दूसरी सखी के साथ, एक महोत्सवके दिन नगरको देखने गयी। वहींपर अत्यन्त सुन्दर एक राजकुमार किसी प्रकार उसको दृष्टिगोचर हुआ। उसके दर्शनके साथ ही कामदेवके बाणोंसे घायल हुई वह अपनी सखीसे कहने लगी—'हे सखि ! जैसे इसके साथ समागम हो' ऐसा कोई प्रयत्न तुम आजही करो।'

एवञ्च श्रुत्वा सा सखी तत्सकाशं गत्वा शीघ्रमब्रवीत्—यदहं चन्द्रवत्या तवान्तिकं प्रेषिता। भणितं च त्वां प्रति तया 'यन्मम त्वद्दर्शनान्मनोभवेन पश्चिमावस्था[1] कृता। तद्यदि शीघ्रमेव मदन्तिके न समेष्यसि तदा मे मरणं शरणम् ।' इति श्रुत्वा तेनाभिहितम्—'यद्वश्यं मया तत्रागन्तव्यं तत्कथय, केनोपायेन प्रवेष्टव्यम् ।'

---

* यह कथा परीक्षार्थी बालकोंके लिए त्याज्य होनी चाहिए, क्योंकि सर्वथा श्लील होनेके कारण पाठ्योपयुक्त नहीं है। (द्विजेन्द्र)

१-पश्चिमावस्था अन्तिमा दशा मरणदशेत्यर्थः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसा सुनकर वह सखी शीघ्रतासे उसके पास जाकर बोली—मैं चन्द्रवती द्वारा तुम्हारे यहाँ भेजी गयी हूँ। उसने तुमसे कहा है कि "तुम्हारे दर्शनमात्रसे ही कामदेवने मेरी अन्तिम अवस्था कर दी है। इसलिये यदि शीघ्र ही तुम मेरे पास न आओगे तो मेरे प्राण अवश्यमेव न बचेंगे।" यह सुनकर उसने कहा—'यदि अवश्य ही मुझे वहाँ जाना है तो कहो, किस उपायसे जाना चाहिये।'

अथ सख्याभिहितम्—'रात्रौ सौधावलम्बितया दृढवरत्रया त्वया तत्रारोढव्यम्।' सोऽब्रवीत् यद्येवं निश्चयो भवत्यास्तदहमेवं करिष्यामि।' इति निश्चित्य सखी चन्द्रवतीसकाशं गता। अथागतायां रजन्यां स राजपुत्रः स्वचेतसा व्यचिन्तयत्—'अहो! महदकृत्यमेतत्। उक्तञ्च—

तब सखीने कहा—'रात्रिके समय अटारीसे एक मजबूत रस्सी (बरंहा) लटकता रहेगा, उसीके सहारे तुम ऊपर चढ़ आना। उसने कहा—'यदि तुम ऐसा निश्चय कर चुकी हो तो मैं भी वैसा ही करूँगा।' इस तरह निश्चय करके सखी चन्द्रवतीके पास वापस चली गयी। जब रात्रिका समय आया, तब उस राजकुमारने अपने मनमें सोचा—'अहो! यह तो बड़ा भारी पाप कर्म है। कहा भी है—

गुरोः सुतां मित्रभार्यां स्वामिसेवकगेहिनीम्।
यो गच्छति पुमाँल्लोके तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥११३॥

गुरुकी पुत्री, मित्रकी स्त्री, स्वामी अथवा सेवक की स्त्रीके

१—'बरहा' शब्द 'वरत्रा' का ही अपभ्रंश रूप है। नारियल सन या चाम का भी यह बरहा (रस्सा) बनता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साथ जो मनुष्य सहवास (सम्भोग) करता है, उसे विद्वानोंने ब्रह्मघाती कहा है ॥ ११३ ॥

अपरञ्च—और भी

अयशः प्राप्यते येन येन चापगतिर्भवेत् ।
स्वर्गाच्च भ्रश्यते येन तत्कर्म न समाचरेत्' ॥११४॥

जिससे अपयश मिलता हो, जिससे निकृष्ट गति मिलती हो और जिससे स्वर्गलोकसे भ्रष्ट होना पड़ता हो, वह कर्म कभी न करे ॥ ११४ ॥

इति सम्यग्विचार्य तत्सकाशं न जगाम । अथ 'प्राप्तव्यमर्थः' पर्यटन्धवलगृहपार्श्वे रात्रावयवलम्बित-वरत्रां दृष्ट्वा कौतुकाविष्टहृदयस्तामालम्ब्याधिरूढः।

इस प्रकार भलीभाँति विचार कर वहाँ नहीं गया। उधर रातको "प्राप्तव्यमर्थ" घूमता हुआ उस धवल धामके पास पहुँचा और लटकते हुए रस्सेको पकड़कर आसानीसे ऊपर चढ़ गया।

तया च राजपुत्र्या स एवायमित्याश्वस्तचित्तया स्नानखादनपानाच्छादनादिना सम्मान्य तेन सह शयनतलमाश्रितया तदङ्गसंस्पर्शसञ्जातहर्ष-रोमाञ्चितगात्रयोक्तम्—' युष्मद्दर्शनमात्रानुरक्तया मयात्मा प्रदत्तोऽयम् । त्वद्वर्जमन्यो भर्ता मनस्यपि मे न भविष्यति—इति । तत्कस्मान्मया सह न ब्रवीषि ?'

उस राजकुमारीने इसे देखा तो वही राजकुमार समझा

१—धवल-धाम (चूना पुता हुआ मकान) धवलगृह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और स्नान, भोजन, पान तथा वस्त्र-आदिसे सम्मान करके उसके पास शय्यापर बैठ गयी। उस समय 'प्राप्तव्यमर्थं' के अङ्गस्पर्शसे उस कन्याके रोंगटे खड़े होगये। वह बोली—"आपके दर्शनमात्रसे मोहित होकर अपनी आत्माको मैंने आपके हाथ सुपुर्द कर दिया है। अतः आपके अतिरिक्त दूसरा कोई स्वामी मेरे हृदयमें स्थान न पा सकेगा। (जब ऐसा है तब) आप मुझसे क्यों नहीं बोलते?"

सोऽब्रवीत्—'प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः।' इत्युक्ते तयान्योऽयमिति मत्वा धवलगृहादुत्तार्य मुक्तः। स तु खण्डदेवकुले गत्वा सुप्तः।

उसने कहा—"प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः"। उसके ऐसा कहनेपर राजकुमारीने समझ लिया कि यह वह राजकुमार नहीं है, इसलिये उसे अटारीसे उतारकर नीचे छोड़ दिया। वहाँसे चलकर वह एक देवालयके खंडहरमें जाकर सो रहा।

अथ तत्र कयाचित्स्वैरिण्या दत्तसंकेतको यावद्दण्डपाशकः प्राप्तः, तावदसौ पूर्वसुप्तेन दृष्टो रहस्यसंरक्षणार्थमभिहितश्च—'को भवान्'? सोऽब्रवीत्—'प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः।' इति श्रुत्वा दण्डपाशकेनाभिहितम्—'यच्छून्यं देवगृहमिदम्। तदत्र मदीयस्थाने गत्वा स्वपिहि।' तथा प्रतिपद्य समतिविपर्यासादन्यशयने सुप्तः।

* प्राचीनकालमें 'पुलिस' के स्थानपर दण्डपाणि, नगररक्षक, रक्षिपुरुष, राजपुरुष-आदि शब्द व्यवहृत होते थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस स्थानपर किसी कुलटा स्त्रीके संकेतसे एक पुलिस* कर्मचारी ज्योंहीं पहुँचा, त्योंहीं वहाँ इसे पहलेसे ही सोया हुआ पाया, इस रहस्यको छिपानेके लिए उसने इससे पूछा—'आप कौन हैं ?' उसने कहा—'प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः' । यह सुनकर दण्डपाशक (पुलिस) ने कहा—'यह देवालय सुनसान है । अतः तुम वहाँ मेरी जगहपर जाकर सो रहो ।' यह बात स्वीकार करके वहाँ गया तो भ्रमवश उसकी चारपाईपर न लेटकर वह एक दूसरे बिछौने पर सो गया ।

अथ तस्य रक्षकस्य कन्या विनयवती नाम रूपयौवनसम्पन्ना कस्यापि पुरुषस्यानुरक्ता संकेतं दत्त्वा तत्र शयने सुप्तासीत् । अथ सा तमायातं दृष्ट्वा स एवायमस्मद्वल्लभ इति रात्रौ घनतरान्धकारव्यामोहितोत्थाय भोजनाच्छादनादिक्रियां कारयित्वा गांधर्वविवाहेनात्मानं विवाहयित्वा तेन समं शयने स्थिता विकसितवदनकमला तमाह—'किमद्यापि मया सह विश्रब्धं भवान्न ब्रवीति ।' सोऽब्रवीत्—'प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः ।'

उस नगर-रक्षक (पुलिस) की 'विनयवती' नामकी एक परम सुन्दरी रूप-यौवनसे सम्पन्न कन्या थी, जो किसी पर-पुरुष पर आसक्त थी । वह अपने यार (जार पुरुष) को संकेत देकर पासही एक बिछौनेपर सो रही थी । उसने उसे आया देखकर समझ लिया कि मेरा प्रणयी (प्रेमी यार) आ गया है, ऐसा

१—निज इच्छासे हो जहाँ, कन्या-वर-संयोग ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोचकर, रात्रिके उस घने अन्धकारमें मोहित होकर भोजन, वस्त्र-आदिसे उसका आदर-सत्कार करके उसके साथ अपना गान्धर्व-विवाह कर लिया और फिर एकही विस्तरे पर बैठ, प्रसन्न-वदन होकर उसने कहा—'अब भी आप निश्चिन्त मनसे मेरे साथ वर्त्तालाप क्यों नहीं करते ?' उसने कहा—"प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः ।"

इति श्रुत्वा तया चिन्तितम्—'यत्कार्यमसमीक्षितं क्रियते तस्यैदृक्फलविपाको भवति' इति । एवं विसृश्य सविषादया तया निःसारितोऽसौ । स च यावद्वीथीमार्गेण गच्छति तावदन्यविषयवासी वरकीर्तिनामा वरो महता वाद्यशब्देनागच्छति । प्राप्तव्यमर्थोऽपि तैः समं गन्तुमारब्धः ।

यह सुनकर कन्याने सोचा—"जो कार्य बिना समझे-बूझे किया जाता है, उसका यही फल होता है ।" इस तरह विचार करके उसने खेदके साथ इसे निकाल दिया । यह गलीके रास्ते जा रहा था कि उधरसे दूसरे देशका रहने वाला "वरकीर्ति" नामका दुलहा बड़े बाजे-गाजेके साथ बारात लिये जा रहा था । 'प्राप्तव्यमर्थ' भी उन लोगोंके साथ ही चलने लगा ।

अथ यावत्प्रत्यासन्ने लग्नसमये राजमार्गासन्नश्रेष्ठिगृहद्वारे रचितमण्डपवेदिकायां कृतकौतुकमङ्गलवेशा वणिक्सुतास्ति, तावन्मदमत्तो हस्त्यारोहकं हत्वा प्रणश्यज्जनकोलाहलेन लोकमाकुलयँ-

---

सो 'गान्धर्व-विवाह' है, कहैं पुरातन लोग ॥ (विवाह-रहस्य)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
१—प्रत्यासन्ने ...

त्तत्रैवोद्देशं प्राप्तः। तञ्च दृष्ट्वा सर्वे वरानुयायिनो वरेण सह प्रणश्य दिशो जग्मुः।

जब विवाहका समय निकट आया, तब राजमार्गके किनारे एक सेठके मकानके दरवाजेपर बनायी हुई मण्डपमें मंगलमय वेष धारण करके बनियेकी लड़की ज्योंही आयी, त्योंही एक हाथी अपने महावत (पीलवान) को मारकर भा..ते हुए मनुष्योंके कोलाहल (शोर)से सब लोगोंको व्याकुल करता हुआ उसी स्थानपर आ पहुँचा। उसे देखकर जितने भी बाराती थे; वे सब वर–समेत भागकर इधर उधर चले गये।

अथास्मिन्नवसरे भयतरललोचनामेकाकिनीं कन्यामवलोक्य 'मा भैषीः; अहं परित्राता' इति सुधीरं स्थिरीकृत्य दक्षिणपाणौ संगृह्य महासाहसिकतया प्राप्तव्यमर्थः परुषवाक्यैर्हस्तिनं निर्भर्त्सितवान्। ततः कथमपि दैवयोगादपयाते हस्तिनि ससुहृद्बान्धवेनातिक्रान्तलग्नसमये वरकीर्तिनाऽऽगत्य तावत्तां कन्यामन्यहस्तगतां दृष्ट्वाभिहितम्। 'भोः श्वशुर ! विरुद्धमिदं त्वयानुष्ठितं यन्मह्यं प्रदाय कन्यान्यस्मै प्रदत्ता' इति।

ऐसे अवसरपर भयसे चंचल नेत्रवाली उस वणिक् कन्याको देखकर "मत डरो; मैं रक्षक हूँ" ऐसा गम्भीरतापूर्वक कह कर ढाढस बँधाया और कन्याका दाहिना हाथ पकड़कर "प्राप्तव्यमर्थ" ने बड़े साहससे हाथीको डाँटा। किसी तरह दैवयोगसे

१–वरानुयायिनो वरयात्रिकाः (बराती) हिन्दीभाषायां "बारात" इति प्रसिद्धम्। २–अस्य हस्तिनमिति कर्म। ३–वरकीर्तिना इति शेषः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हाथीके चले जाने और लग्नका समय बीत जानेपर अपने मित्र—सम्बन्धियोंके साथ जब 'वरकीर्ति' वापस लौट आया तो उसने उस कन्याको दूसरेके हाथमें गयी देखकर कहा—"ससुरजी ! आपने यह विरुद्ध कार्य किया, जो अपनी कन्या मुझे देकर फिर दूसरेको दे दी ।'

सोऽब्रवीत्—भोः ! अहमपि हस्तिभयपलायितो भवद्भिः सहायातो न जाने किमिदं वृत्तम् ।' इत्यभिधाय दुहितरं प्रष्टुमारब्धः—'वत्से ! न त्वया सुन्दरं कृतम् । तत्कथ्यतां कोऽयं वृत्तान्तः ?' साब्रवीत्—'यदहमनेन प्राणसंशयाद्रक्षिता, तदेनं मुक्त्वा मम जीवन्त्या नान्यः पाणिं ग्रहीष्यति' इति[1] । अनेन वार्ताव्यतिकरेण रजनी व्युष्टा ।

उसने कहा—'मैं भी उस हाथीके भयसे भाग गया था, अभी तुम लोगोंके साथ वापस आया हूँ । इसी बीच न जाने क्या हो गया ! ऐसा कहकर कन्यासे पूछने लगा—'पुत्रि ! तुमने अच्छा नहीं किया । अच्छा, बताओ तो वास्तवमें क्या बात है ? उसने उत्तर दिया कि "इसने मुझे प्राण-संकटसे बचाया है, इस कारण मेरे जीते जी इसके सिवाय और कोई मुझे नहीं व्याह सकता ।" इन्हीं बातोंमें रात बीत गयी ।

अथ प्रातस्तत्र सञ्जाते महाजनसमवाये वार्ताव्यतिकरं श्रुत्वा राजदुहिता तमुद्देशमागता । कर्णपरम्परया श्रुत्वा दण्डपाशकसुतापि तत्रैवाजगाम ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१—'सकृत्कन्या प्रदातव्या'—इति स्मृति-स्मरणात् ।

प्राप्तव्यमर्थं प्राह च—'भोः! विश्रब्धं कथय, कीदृशोऽसौ वृत्तान्तः?'

इसके बाद प्रातः काल वहुतसे लोगोंके एकत्र होनेपर राजकन्या वहां आई और कानों-कान यह समाचार सुनकर दण्डपाशक (पुलिस) की वह कन्या भी वहाँ आयी। इसी बीच बड़े लोगोंकी भीड़-भाड़ सुनकर राजा भी वहाँ आ पहुंचे, और 'प्राप्तव्यमर्थसे बोले—'अरे! तुम निःसंकोच भाव से वतला दो, यह कैसा बृत्तान्त है?'

अथ सोऽब्रवीत्—प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः' इति। राजकन्या स्मृत्वा प्राह—'देवोऽपि तं लङ्घितुं न शक्तः' इति। ततो दण्डपाशकसुताऽब्रवीत्-'तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे' इति। तमखिललोकवृत्तान्तमाकर्ण्य वणिक्सुताऽब्रवीत्--'यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्' इति।

यह सुनकर उसने उत्तर दिया—"प्राप्तव्यमर्थ लभते मनुष्यः।" राजकन्याने भी स्मरण करके कहा—"देवोऽपि तं लंघयितुं न शक्तः।" इसके बाद उस पुलिसकी लड़कीने कहा—"तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे"। यह सारा कौतुकमय वृत्तान्त सुनकर वनियेकी लड़कीने कहा—"यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्।"

ततोऽभयदानं दत्त्वा राजा पृथक्पृथग्वृत्तान्ताञ्ज्ञात्वावगततत्त्वस्तस्मै प्राप्तव्यमर्थाय स्वदुहितरं सबहुमानं ग्रामसहस्रेण समं सर्वालङ्कारपरि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दारसुतां दत्त्वा 'त्वं मे पुत्रोऽसीति' नगरविदितं तं यौवराज्येऽभिषिक्तवान् । दण्डपाशकेनापि स्वदुहिता स्वशक्त्या वस्त्रदानादिना सम्भाव्य प्राप्तव्यमर्थाय प्रदत्ता ।

इसके बाद अभय दान देकर और एक २ करके सब समाचार जानकर, बड़े आदरसे एक हजार गाँवके साथ सब प्रकारके भूषण एवं सेवक-सेविकाओंके साथ अपनी कन्या उसे देदी। साथही "तुम मेरे पुत्र हो"-ऐसा नगरमें घोषणा करके उसे युवराजके पदपर अभिषिक्त कर दिया। दण्डपाशकने भी अपनी शक्तिके अनुसार वस्त्राभूषणसे उसका सत्कार करके अपनी कन्या 'प्राप्तव्यमर्थ' को दे दी।

अथ प्राप्तव्यमर्थेनापि स्वीयपितृमातरौ समस्तकुटुम्बावृतौ तस्मिन्नगरे सम्मानपुरःसरं समानीतौ । अथ सोऽपि स्वगोत्रेण सह विविधभोगाननुभुञ्जानः सुखेनावस्थितः । अतोऽहं ब्रवीमि—'प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः' इति । तदेतत्सकलं सुखदुःखमनुभूय परं विषादमुपागतोऽनेन मित्रेण त्वत्सकाशमानीतः । तदेतन्मे वैराग्यकारणम् ।'

इसके बाद 'प्राप्तव्यमर्थ' भी बड़े आदरके साथ सारे कुटुम्बियोंके सहित अपने माता-पिताको वहाँ ले आया। वह भी अपने गोतियोंके साथ विविध प्रकारके सुखोंका उपभोग करता हुआ आनन्दके साथ रहने लगा। इसीलिये मैं कहता हूँ-"प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः।" अर्थात् प्राप्त होनेवाले धनको मनुष्य पाता ही है-इत्यादि। सो इस प्रकारके सुख-दुःखोंका अनुभव करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बड़े विषादको प्राप्त होकर इनके साथ मैं तुम्हारे पास आया हूँ। यही मेरे वैराग्यका कारण है।' *

मन्थरक आह—'भद्र! भवति सुहृदयमसन्दिग्धं, यः क्षुत्क्षामोऽपि शत्रुभूतं त्वां भक्ष्यस्थाने स्थितमेवं पृष्ठमारोप्यानयति न मार्गेऽपि भक्षयति।

उक्तञ्च यतः।

मंथरकने कहा—'महाशय! निःसन्देह यह कौआ तुम्हारा मित्र है, जिसने भूखे रहते हुए तुम्हारे-जैसे खाद्य जीवके पास रहनेपर भी इस प्रकार पीठपर चढ़ाकर तुझे यहाँ तक लाया और रास्तेमें भी नहीं खाया। क्योंकि कहा भी है:—

विकारं याति नो चित्तं वित्ते यस्य कदाचन।
मित्रं स्यात्सर्वकाले च कारयेन्मित्रमुत्तमम् ॥११६॥

धनके विषयमें जिसका चित्त कभी विकृत न हो और जो सब समय (सुखदुःख) में मित्रही बना रहे—ऐसे उत्तम मनुष्यको मित्र बनाना चाहिये॥ ११६॥

विद्वद्भिः सुहृदामत्र चिह्नैरेतैरसंशयम्।
परीक्षाकरणं प्रोक्तं होमाग्नेरिव पण्डितैः ॥११७॥

विद्वानोंने इन्हीं चिह्नोंसे परीक्षा करनेकी राय दी है, जैसे लोग होमकी अग्निकी परीक्षा करते हैं॥ ११७॥

तथा च। और भी—

आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत्।
वृद्धिकाले तु सम्प्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद्भवेत्॥११८॥

---

* यहां तककी कथा अश्लील होनेके कारण विद्यार्थियोंके लिये त्याज्य होनी चाहिये।

१—अयं वायसः असन्दिग्धं सुहृद्, अत्र सन्देहो नास्तीत्यर्थः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आपत्ति कालके आनेपर भी जो मित्र ही बना रहता है, वही वास्तवमें मित्र है; क्योंकि उन्नतिके समय (अच्छी दशामें) तो शत्रु भी मित्र हो जाया करता है ॥ ११८ ॥

तन्मयाद्यप्रभृत्यस्य विषये विश्वासः समुत्पन्नो यतो नीतिविरुद्धेयं मैत्री मांसाशिभिर्वायसैः सह जलचराणाम् । अथवा साध्विदमुच्यते—

इसलिये आजसे हमें भी इसके प्रति विश्वास हो गया है; क्योंकि मांसाहारी कौवोंके साथ हमारे जैसे जलचरोंकी यह मैत्री नीति-विरुद्ध है । अथवा किसीने ठीकही कहा है:—

मित्रं कोऽपि न कस्यापि नितान्तं न च वैरकृत् ।
दृश्यते मित्रविध्वस्तात्कार्याद्वैरी परीक्षितः ॥११९॥

न कोई किसीका सर्वदा मित्र है, न शत्रु ही है; क्योंकि अपने मित्रसे भी यदि कोई काम बिगड़ जाता है तो वह अपना शत्रु समझा जाता है । ऐसा संसारमें देखा जाता है ॥

तत्स्वागतं भवतः । स्वगृहवदास्यतामत्र सरस्तीरे । यच्च वित्तनाशो विदेशवासश्च ते सञ्जातस्तत्र विषये सन्तापो न कर्तव्यः । उक्तञ्च—

अतः मैं आपका 'स्वागत' करता हूँ । अब आप इस तालाबके तटपर अपने घरकी तरह रहिये । हाँ ! आपका धन नष्ट हो गया है और विदेशमें रहना पड़ रहा है, इस विषयमें चिन्ता न करनी चाहिये । कहा भी है:—

अभ्रच्छाया खलप्रीतिः सिद्धमन्नं च योषितः ।
किञ्चित्कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च ॥

१—आपतकाल परखिये चारी । धीरज धर्म मित्र अरु नारी । (रामायण)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेघकी छाया, दुर्जनोंकी प्रीति, तैयार भोजन, स्त्री यौवन और धन—ये सब वस्तुएँ कुछ ही समय तक उपभोगके योग्य हुआ करती हैं ॥ १२० ॥

अत एव विवेकिनो जितात्मानो धनस्पृहां न कुर्वन्ति । उक्तञ्च—

इसीलिये ज्ञानी और जितेन्द्रिय (योगी) लोग धनकी इच्छा नहीं करते । कहा भी है:—

सुसञ्चितैर्जीवनवत्सुरक्षितै-
र्निजेऽपि देहे न नियोजितैः क्वचित् ।
पुंसो यमान्तं व्रजतोऽपि निष्ठुरै-
रेतैर्धनैः पञ्चपदी न दीयते ॥ १२१ ॥

अच्छी तरह एकत्र किये हुए, जीवन (प्राण) की भाँति सुरक्षित, कभी अपने शरीरके लिये भी नहीं खरचे हुए—ये धन ऐसे निष्ठुर होते हैं कि यमराजके घर जाते समय (मरने पर) मनुष्यका पाँच पग भी साथ नहीं देते । अर्थात् ये सांसारिक धन-वैभव अन्त समयमें जहाँके तहाँ पड़े रह जाते हैं ॥ १२१ ॥

अन्यच्च । और भी—

यथामिषं जले मत्स्यैर्भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि ।
आकाशे पक्षिभिश्चैव तथा सर्वत्र वित्तवान् ॥१२२॥

जिस प्रकार मांस जलमें मछलियों द्वारा, पृथ्वीमें हिंसक जन्तुओं द्वारा और आकाश में पक्षियों द्वारा खाया जाता है, उसी प्रकार धनवान् मनुष्य सर्वत्र ही खाया जाता है ॥ १२२ ॥

१—पंचपदगमनार्थं पाथेयमिति भावः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्दोषमपि वित्ताढ्यं दोषैर्योजयते नृपः ।
निर्धनः प्राप्तदोषोऽपि सर्वत्र निरुपद्रवः ॥ १२३ ॥

निरपराधी धनवान् मनुष्यपर राजा भी दोषारोपण कर देता है और निर्धन मनुष्य अपराधी होनेपर भी सर्वत्र निर्दोष ही समझा जाता है ॥ १२३ ॥

अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे ।
नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान्कष्टसंश्रयान् ॥ १२४ ॥

धनके कमानेमें दुःख, कमाये हुए धनकी रक्षा करनेमें दुःख, उसके (किसी प्रकार) नष्ट होनेमें दुःख, व्ययमें दुःख–इस प्रकार दुःख एवं कष्टोंके घर रूपी धनको धिक्कार है ! ॥१२४॥

अर्थार्थी यानि कष्टानि मूढोऽयं सहते जनः ।
शतांशेनापि मोक्षार्थी तानि चेन्मोक्षमाप्नुयात् ॥

धनको चाहने वाला मूर्ख मनुष्य उस धनके लिये जितना कष्ट सहता है, उसका शतांश भी यदि वह मोक्षके लिये कष्ट सहे, तो अवश्य हो उसकी मुक्ति (सद्गति) हो जाय ॥ १२५ ॥

अपरं विदेशवासजमपि वैराग्यं त्वया न कार्यम् । यतः—

दूसरे, विदेशमें निवास करनेके कारण भी तुम्हें वैराग्य (वियोग–दुःख) न करना चाहिये । क्योंकि—

को धीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशः स्मृतो
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।
यद्दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणैः सिंहो वनं गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ॥

१–धनलोभादिति भावः । २–वियोगदुःखमित्यर्थः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भला, मनस्वी धीर पुरुषके लिये कौन-सा अपना देश या परदेश है ? वह तो जिस देशमें जाता है, उसे अपने बाहुबलसे वशमें कर लेता है। जैसे सिंह चाहे जिस वनमें जाय, वहाँ ही अपने दाँत, नख और पूँछके बल-प्रहारसे हाथियोंको मारकर उनके रुधिर से अपनी प्यास बुझाता है। यह 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है ॥ १२६ ॥

अर्थहीनः परे देशे गतोऽपि यः प्रज्ञावान्भवति स कथञ्चिदपि न सीदति । उक्तञ्च—

बुद्धिमान् मनुष्य धनहीन होता हुआ भी परदेशमें जाकर कभी दुःखी नहीं होता। कहा भी है—

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ?
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥

समर्थ (बली) पुरुषके लिये बहुत बड़ा बोझ क्या है ? व्यौपारीके लिये दूर कौन सा स्थान है ? (अर्थात् कोई नहीं) विद्वानों के लिये—विदेश क्या वस्तु है। और मीठी वाणी बोलने वालेका भला कौन शत्रु है ? (कोइ नहीं) ॥ १२७ ॥

तत्प्रज्ञानिधिर्भवान्न प्राकृतपुरुषतुल्यः । अथवा-

सो आप तो बुद्धिमान् हैं, कोई ऐसे-वैसे (साधारण) पुरुष के समान तो हैं नहीं ! अथवा—

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं
क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम् ।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च
लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः १२८

१—प्रज्ञानिधिः—बुद्धिमान् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्साही, आलस्य-रहित कर्त्तव्य-परायण, व्यसन (शौक-विलास) रहित, बलवान्, कृतज्ञ (उपकार माननेवाले) और दृढ़ मैत्री वाले पुरुषको तो लक्ष्मी स्वयं ही अपना निवास-स्थान बनाने के लिये ढूँढ़ती फिरती हैं ॥ १२८ ॥ 'उपजातिवृत्तम् ।'

अपरं प्राप्तोऽप्यर्थः कर्मप्राप्त्या नश्यति । तदेतावन्ति दिनानि स्वदीयमासीत् मुहूर्त्तमप्यनास्मीयं भोक्तुं न लभ्यते । स्वयमागतमपि विधिनापह्रियते ।

दूसरे, पाया हुआ धन भी संयोग-वश नष्ट हो जाता है । वह धन इतने दिनों तक तुम्हारा था । दूसरेकी वस्तु क्षण भरके लिये भी अपनेको उपयोग करनेके लिये नहीं मिल सकती ! यदि वह स्वयं आ भी जाय तो फिर दैव (भाग्य) द्वारा छीन ली जाती है ॥

अर्थस्योपार्जनं कृत्वा नैव भोगं समश्नुते ।
अरण्यं महदासाद्य मूढः सोमिलको यथा' ॥१२९॥

धन कमाकर भी मूर्ख मनुष्य उसका उपभोग नहीं कर सकता । जैसे कि एक विशाल वनमें जाकर उस मूढ़ 'सोमिलक' ने किया ॥ १२९ ॥

हिरण्यक आह—'कथमेतत् ?' स आह—

हिरण्यकने कहा—'यह कैसे ?' उसने कहा—

१-कर्मप्राप्त्या—संयोगवशेन । २-" पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते ।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथा ५

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने सोमिलको नाम कौलिको वसतिस्म। स चानेकविधपट्टरचनारञ्जितानि पार्थिवोचितानि वस्त्राण्युत्पादयति। परं तस्य चानेकविधपट्टरचनानिपुणस्यापि न भोजनाच्छादनाभ्यधिकं कथमप्यर्थमात्रं सम्पद्यते। अथान्ये तत्र सामान्यकौलिकाः स्थूलवस्त्रसम्पादनविज्ञानिनो महर्द्धिसम्पन्नाः।

किसी शहरमें 'सोमिलक' नामका एक जुलाहा रहता था। वह राजाओंके योग्य विविध प्रकारके रंग-बिरंगे कपड़े तैयार किया करता था; किन्तु अनेक प्रकारके वस्त्र-रचना सम्बन्धी काममें निपुण रहता हुआ भी वह भोजन-वस्त्रसे अधिक धन किसी तरह नहीं प्राप्त कर पाता था। वहीं पर दूसरे साधारण जुलाहे, जो मोटे कपड़े बनाते थे, वे उससे बड़े धनाढ्य हो गये थे।

तानवलोक्य स स्वभार्यामाह—'प्रिये! पश्यैतान्स्थूलपट्टकारकान्धनकनकसमृद्धान्। तदधारणकं ममैतत्स्थानम्। तदन्यत्रोपार्जनाय गच्छामि।'

१—कौलिकः तन्तुवायाख्यजातिविशेषः (जुलाहा) २—यहाँपर 'पट' शब्द उपयुक्त जंचता है;क्योंकि सुन्दर वस्त्र को 'पट' कहते हैं। 'सुचेलकः पटोऽस्त्रीस्यात्' इत्यमरः। परन्तु 'पट्ट' तो काष्ठादिरचित आसन विशेष को कहते हैं। यथा—"पट्टश्चतुष्पथे पीठे राजादेः शासनान्तरे। व्रणादिबन्धने पेषाश्मनीति" हैमः। ३—उत्पादयति—वयति (बुनना)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन सबोंको देखकर सोमिलकने अपनी स्त्रीसे कहा—"प्रिये ! इन मोटे कपड़े खद्दर बनानेवालोंके वैभवको तो देखो ! मुझे यह स्थान नहीं सहता । अतः धनोपार्जनके लिये मैं दूसरी जगह जा रहा हूँ ।"

सा प्राह—'भोः प्रियतम ! मिथ्याप्रलपितमेतद्यदन्यत्र गतानां धनं भवति स्वस्थाने न भवतीति । उक्तञ्च—

उसने कहा—'हे प्रियतम ! यह झूठी बात है कि 'जो लोग अन्यत्र चले जाते हैं, उनको धन मिलता है और अपने स्थान पर रहनेवालों को नहीं मिलता ।' कहा भी है—

उत्पतन्ति यदाकाशे निपतन्ति महीतले ।
पक्षिणां तदपि प्राप्त्या नादत्तमुपतिष्ठति ॥१३०॥

ये पक्षी, जो आकाशमें उड़ते और पृथ्वीपर गिरते हैं, वे प्राप्तिकी आशासे ही; किन्तु उनको भी वह वस्तु नहीं मिलती, जो पूर्वजन्ममें न दिया हो । अर्थात् अपने किये हुए कर्मको ही जीव अन्य योनिमें पाता है ॥ १३० ॥

तथा च । और भी—

नहि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन । करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति॥ १३१ ॥

जो नहीं होनेवाला है वह नहीं ही होगा । जो होनेवाला है, वह बिना किसी उद्यमके भी होकर ही रहेगा, क्योंकि जो

१—'यथा मृत्पिण्डतः कर्त्ता कुरुते यद्यदिच्छति ।
एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने पास रहनेवाला नहीं होता, वह हथेलीमें आकर भी नष्ट हो जाता है ॥१३१ ॥ 'आर्य्यावृत्त' ।

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा पुराकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ १३२ ॥

जैसे हजारों गौओंमें भी बछड़ा अपनी माताको ढूँढ़ लेता है, वैसे ही पूर्व जन्मका कर्म कर्त्ताको ढूँढ़ लेता है ॥

शेते सह शयानेन गच्छन्तमनुगच्छति ।
नराणां प्राक्तनं कर्म तिष्ठेत्तथ सहात्मना ॥१३३॥

पूर्व जन्मका किया हुआ कर्म, करनेवाले मनुष्य के साथ सोता है, उसके चलनेपर पीछे २ चलता है और बैठनेपर बैठता है अर्थात् सर्वदा अपना कर्म अपने साथही रहता है ॥ १३३ ॥

यथा छायातपौ नित्यं सुसम्बद्धौ परस्परम् ।
एवं कर्म च कर्त्ता च संश्लिष्टावितरेतरम् ॥१३४॥

जिस प्रकार धूप और छायेका आपसमें नित्य एवं सुदृढ़ सम्बन्ध है, उसी प्रकार कर्त्ता और कर्मका भी परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है ॥ १३४ ॥

तस्मादत्रैव व्यवसायपरो भव ।' कौलिक आह—'प्रिये ! न सम्यगभिहितं भवत्या । व्यवसायं विना कर्म न फलति । उक्तञ्च—

इसलिये तुम यहींपर रहकर अपने व्यापार (काम) में लगे रहो ।' जुलाहेने कहा—'प्रिये ! तुमने यह ठीक नहीं कहा । विना उद्योगके कर्म भी नहीं फलता । कहा भी है—

यथैकेन न हस्तेन तालिका सम्प्रपद्यते ।
तथोद्यमपरित्यक्तं न फलं कर्मणः स्मृतम् ॥१३५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस प्रकार केवल एक हाथसे ताली नहीं बजती, उसी प्रकार बिना उद्योग किये कर्म (भाग्य) का फल भी नहीं मिलता। ऐसा बड़े लोगोंने कहा है॥ १३५॥

पश्य कर्मवशात्प्राप्तं भोज्यकालेऽपि भोजनम् ।
हस्तोद्यमं विना वक्त्रे प्रविशेन्न कथञ्चन ॥ १३६ ॥

देखो न ! भोजनके समय कर्मवश सामने आया हुआ भी भोजन, बिना हाथके उद्यम किये किसी तरह मुखमें नहीं जाता॥

तथा च । और भी—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र[1] दोषः ॥

उद्योगी पुरुषके पास लक्ष्मी स्वयं ही दौड़ी जाती है और कायर पुरुष केवल "दैव-दैव" चिल्लाया करते हैं। इसलिये दैव (भाग्य) को एक तरफ रखकर, अपनी शक्तिके अनुसार पुरुषार्थ करो। हाँ, यदि यत्न करनेपर भी सिद्धि प्राप्त न हो तो यह सोचो कि हमारे इस उद्योगमें कौन-सी कमी रह गयी ! यह 'वसन्ततिलका वृत्त' है॥ १३७॥

तथा च । और भी—

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सिंहस्य सुप्तस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः १३८

१—'अत्र' इति शब्देनात्र केचित् 'संसारे' इति आमनन्ति । किन्तु 'अत्र' इत्यस्य उद्योगकर्मणि एवार्थः समीचीनः प्रतिभाति । अतोऽत्र का त्रुटिरित्यवबोद्धव्येति भावः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उद्योग करनेसे ही कार्य सिद्ध होता है, केवल मनमें इच्छा रखने मात्रसे नहीं; क्योंकि सोये हुए सिंहके मुखमें मृग (पशु) स्वयं ही नहीं चले जाते ॥ १३८ ॥

उद्यमेन विना राजन्न सिद्ध्यन्ति मनोरथाः ।
कातरा इति जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति १३९

हे राजन् ! विना उद्यमके मनोरथ (कार्य) सिद्ध नहीं होते । कायर लोग ही यह कहा करते हैं कि "जो भाग्यमें लिखा होगा सो होगा ॥ १३९ ॥

स्वशक्त्या कुर्वतः कर्म न चेत्सिद्धिं प्रयच्छति ।
नोपालभ्यः पुमाँस्तत्र दैवान्तरितपौरुषः ॥ १४० ॥

इसलिये अपनी शक्तिके अनुसार कर्म करनेपर भी यदि कार्य न सिद्ध हो तो इससे उस पुरुष को कोई उलाहना नहीं दे सकता; क्योंकि उसके पुरुषार्थमें दैव (प्रारब्ध) ही बाधक हुआ ॥ १४० ॥

तन्मयावश्यं देशान्तरं गन्तव्यम् ।' इति निश्चित्य वर्धमानपुरं गतः। तत्र च वर्षत्रयं स्थित्वा सुवर्णशतत्रयोपार्जनं कृत्वा भूयः स्वगृहं प्रस्थितः ।

इसलिये मुझे अवश्य ही परदेश जाना चाहिये ।' ऐसा निश्चय करके वह 'वर्धमानपुर' नामक नगरमें चला गया । वहाँ तीन वर्ष रहकर उसने तीनसौ मुहरें (अशर्फियाँ) एकत्र कीं और अपने घरकी ओर चल दिया ।

अथार्धपथे गच्छतस्तस्य कदाचिदटव्यां पर्यटतो भगवान् रविरस्तमुपागतः । तदासौ व्यालभयात्स्थूलतरवटस्कन्धमारुह्य यावत्प्रसुप्त-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्तस्तावन्निशीथे स्वप्ने द्वौ पुरुषौ रौद्राकारौ परस्परं प्रजल्पन्तावश्रृणोत् ।

चलते २ रास्तेमें एक वन पड़ा और वहीं सूर्य भगवान् अस्त हो गये । उस समय वह सर्पादि वन-जन्तुओंके डरसे एक मोटे बरगदकी शाखापर चढ़कर सोया ही था कि आधीरातके समय स्वप्नमें दो भयानक आकारके मनुष्योंको परस्परमें बातचीत करते हुए उसने देखा ।

तत्रैक आह—'भोः कर्त्तः ! त्वं किं सम्यङ् न वेत्सि, यदस्य सोमिलकस्य भोजनाच्छादनाभ्यधिका समृद्धिर्नास्ति । तत्किं त्वयास्य सुवर्णशतत्रयं प्रदत्तम् ?

उनमें से एकने कहा—"हे कर्त्ता ! क्या तुम अच्छी तरहसे यह नहीं जानते, कि इस सोमिलकके भाग्यमें भोजन-वस्त्र से अधिक धन नहीं है ? फिर तुमने इसे तीनसौ असर्फियाँ क्यों दी ?

स आह—'भोः कर्मन् ! मयावश्यं दातव्यं व्यवसायिनाम् । तत्र च तस्य परिणतिस्त्वदायत्ता इति ।

उसने कहा-"हे कर्म ! उद्योगियोंको मुझे अवश्य देना चाहिये, लेकिन उसका फल तो तुम्हारे ही अधीन है !"

अथ यावदसौ कौलिकः प्रबुद्धः सुवर्णग्रन्थिमवलोकयति तावद्रिक्तं पश्यति । ततः साक्षेपं चिन्तयामास—'अहो ! किमेतत् महता कष्टेनोपर्जितं वित्तं हेलया क्वापि गतम् । तद्व्यर्थश्रमोऽकिञ्चनः कथं स्वपत्न्या मित्राणां च मुखं दर्शयिष्यामि ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसके बाद जागकर जुलाहेने जब अपनी गठरी देखी तो उसे खाली पाया। ऐसी दशामें वह खिन्न होकर सोचने लगा— "ऐं ! यह क्या हुआ ?,, बड़े परिश्रमसे प्राप्त किया हुआ वह धन एकाएक कहीं गायब हो गया ! अब व्यर्थ-परिश्रम तथा निर्धन होकर मैं अपनी स्त्री एवं मित्रोंको क्या मुख दिखाऊँगा।"

इति निश्चित्य तदेव पत्तनं गतः । तत्र च वर्षमात्रेणापि सुवर्णशतपञ्चकमुपार्ज्य भूयोऽपि स्वस्थानं प्रति प्रस्थितः । यावदर्धपथे भूयोऽटवीगतस्य भगवान् भानुरस्तं जगाम ।

ऐसा निश्चय करके वह फिर उसी नगरमें वापस चला गया और वहाँ केवल एक ही वर्षमें पाँचसौ असर्फियाँ कमाकर फिर अपने घरकी ओर चला। ज्योंही आधे रास्तेमें वह पहुँचा, त्योंही पुनः सूर्यास्त हो गया।

अथ सुवर्णनाशभयात्सुश्रान्तोऽपि न विश्राम्यति । केवलं कृतगृहोत्कण्ठः सत्वरं व्रजति । अत्रान्तरे द्वौ पुरुषौ तादृशौ दृष्टिदेशे समागच्छन्तौ जल्पन्तौ चाशृणोत् । तत्रैकः प्राह—'भोः कर्त्तः ! किं त्वयैतस्य सुवर्णशतपञ्चकं प्रदत्तम् । तत्किं त्वं न वेत्सि, यद्भोजनाच्छादनाभ्यधिकमस्य किंचिन्नास्ति ।' स आह—'भोः कर्मन् ! मयावश्यं देयं व्यवसायिनाम् । तस्य परिणामस्त्वदायत्तः । तत्किं मामुपालम्भयसि ।'

'यह धन फिर न खो जाय' इस भयसे थका हुआ होनेपर भी सोया नहीं, बल्कि घर पहुँचनेकी उत्कट इच्छासे चलता ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहा। इसी बीचमें पहले ही की तरह आकार-प्रकार वाले दो पुरुष आते दिखाई दिये। उनमें से एकने कहा—"कर्त्ता! तुमने इसको पाँच सौ असर्फियाँ क्यों दीं? क्या नहीं जानते, इसके भाग्यमें भोजन-वस्त्रसे अधिक कुछ भी नहीं है?" उसने कहा—'हे कर्म! उद्योगी पुरुषोंको देना हमारा कर्त्तव्य है; किन्तु उसका फल तो तुम्हारे हाथ है। फिर तुम मुझे क्यों उलाहना दे रहे हो?"

तच्छ्रुत्वा सोमिलको यावद्ग्रन्थिमवलोकयति तावत्सुवर्णं नास्ति। ततः परं दुःखमापन्नो व्यचिन्तयत्—'अहो! किं मम धनरहितस्य जीवितेन! तदत्र वटवृक्ष आत्मानमुद्बध्य प्राणाँस्त्यजामि।'

यह सुनकर सोमिलकने गँठरी देखी, तो उसमें असर्फियाँ नहीं थीं। इसके बाद वह बहुत दुःखी होकर सोचने लगा—"अहो! मुझ दरिद्रके जीनेसे क्या लाभ? इस कारण इसी (वट) वृक्षकी डालीमें फाँसी लगाकर मैं अपने प्राणोंका परित्याग कर दूं।"

एवं निश्चित्य दर्भमयीं रज्जुं विधाय स्वकण्ठे पाशं नियोज्य शाखायामात्मानं निबध्य यावत्प्रक्षिपति, तावदेकः पुमानाकाशस्थ एवेदमाह—'भो भोः सोमिलक! मैवं साहसं कुरु। अहं ते वित्तापहारकः। न ते भोजनाच्छादनाभ्यधिकां वराटिकामपि सहामि। तद्गच्छ स्वगृहं प्रति। अन्यच्च भवदीयसाहसेनाहं तुष्टः। यथा मे न स्याद्व्यर्थदर्शनम्, तत्प्रार्थ्यतामभीष्टो वरः कश्चित्।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसा निश्चय करके उसने कुशकी रस्सी बनायी और अपने गलेमें फाँसी लगाकर वह बरगदकी एक शाखामें उस रस्सीको फेंकना ही चाहता था कि, आकाशमें बैठे हुए एक पुरुषने कहा— "रे सोमिलक! ऐसा साहस मत करो। मैं ही तुम्हारा धन अपहरण करनेवाला हूँ। भोजन-वस्त्रसे अधिक एक कौड़ी भी तुम्हारे पास रहना मुझे असह्य है। इसलिये तुम अपने घर जाओ। तुम्हारे साहससे मैं प्रसन्न हूँ। मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होगा। अब तुम कोई मनोभिलषित वरदान माँगो।"

सोमिलक आह-'यद्येवं तद्देहि मे प्रभूतं धनम्'। स आह-'भोः! किं करिष्यसि भोगरहितेन धनेन, यतस्तव भोजनाच्छादनाभ्यधिका प्राप्तिरपि नास्ति। उक्तञ्च—

तब सोमिलकने कहा—'यदि ऐसा है तो तुम मुझे बहुत-सा धन दे दो।' उसने कहा—'अरे! तुम भोगरहित धन लेकर क्या करोगे? क्योंकि भोजन-वस्त्रसे अधिक किसी वस्तुकी प्राप्ति तुम्हारे भाग्यमें नहीं है। कहा भी है—

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला।
या च वेश्येव सामान्या पथिकैरुपभुज्यते ॥१४१॥

उस लक्ष्मीको लेकर क्या किया जाय, जो पुत्रवधू (पतोहू) की तरह हो अथवा साधारण वेश्याकी तरह रहती हुई पथिकों (राहियों) के उपभोग की सामग्री बनी हुई हो। अर्थात् जिससे अपनेको कोई सुख न हो, उस धन-सम्पत्तिसे क्या लाभ?॥

सोमिलक आह—यद्यपि तस्य धनस्य भोगो नास्ति तथापि तद्भवतु। उक्तञ्च—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोमिलकने कहा—"चाहे इस धनका भोग नहीं भी हो, तो भी मुझे बहुत-सा धन हो जाय। कहा भी है—

कृपणोऽप्यकुलीनोऽपि सज्जनैर्वर्जितः सदा।
सेव्यते स नरो लोके यस्य स्याद्वित्तसंश्रयः ॥१४२॥

चाहे वह कृपण और दूषित कुलका हो, चाहे सज्जनोंसे तिरस्कृत ही क्यों न हो; परन्तु यदि उसके पास धनका संग्रह है तो वह संसारमें पूज्य होता है ॥१४२॥

तथा च। और भी—

शिथिलौ च सुबद्धौ च पततः पततो न वा।
निरीक्षितौ मया भद्रे! दशवर्षाणि पञ्च च' ॥१४३॥

हे भद्रे! शिथिल किन्तु अच्छी तरह बँधे और इधर-उधर डोलते हुए बैलके दो अण्डकोशोंको मैं आज १५ वर्षोंसे देखता हूँ कि ये गिरते हैं या नहीं ॥ १४३ ॥

पुरुष आह-'किमेतत्?' सोऽब्रवीत्—

पुरुषने कहा—"यह कैसे?" उसने कहा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथा ६

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने तीक्ष्णविषाणो[1] नाम महावृषभः प्रतिवसतिस्म। स च मदातिरेकात्परित्यक्तनिजयूथः शृङ्गाभ्यां नदीतटानि विदारयन्स्वेच्छया मरकतसदृशानि शष्पाणि भक्षयन्नरण्यचरो बभूव।

किसी स्थानमें 'तीक्ष्णविषाण' नामका एक बड़ा भारी बैल रहता था। वह मदकी अधिकता के कारण अपना यूथ त्यागकर अपनी सींगोंसे नदीके तटोंको खोदता और इच्छानुसार मरतक मणिके समान हरी २ घास चरता हुआ वनमें विचरने लगा।

अथ तत्रैव वने प्रलोभको नाम शृगालः प्रतिवसतिस्म। स कदाचित्स्वभार्यया सह नदीतीरे सुखोपविष्टस्तिष्ठति। अत्रान्तरे स तीक्ष्णविषाणो जलार्थं तदेव पुलिनमवतीर्णः। ततश्च तस्य लम्बमानौ वृषणाव[2]वलोक्य शृगाल्या शृगालोऽभिहितः—'स्वामिन्! पश्यास्य वृषभस्य मांसपिण्डौ लम्बमानौ यथा स्थितौ, तदेतौ क्षणेन प्रहरेण वा पतिष्यतः। एवं ज्ञात्वा भवता पृष्ठानुयायिना भाव्यम्।'

उसी वनमें 'प्रलोभक' नामवाला एक सियार रहता था। वह एक दिन अपनी स्त्रीके साथ नदीके तटपर बैठा था। इसी बीच 'तीक्ष्णविषाण' नामक बैल पानी पीनेके लिए उस घाटपर

१—तीक्ष्णौ निशितौ दृढौ वा विषाणौ शृङ्गौ यस्य सः।
२—वृषणौ=अण्डकोशौ। 'मुष्कोऽण्डकोशो वृषणः' इत्यमरः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उतरा । इसके अनन्तर उसके लटकते हुए अण्डकोशको देखकर सियारिनने सियारसे कहा—"स्वामिन् ! देखो तो, इस बैलके ये दोनों मांसपिण्ड किस तरह लटक रहे हैं । जान पड़ता है कि ये दोनों आँड़ क्षणभर या एक पहरमें ही गिर पड़ेंगे । ऐसा जानकर आपको इसके पीछे होकर चलना चाहिये ।'

शृगाल आह—'प्रिये ! न ज्ञायते कदाचिदेतयोः पतनं भविष्यति वा न वा । तत्किं वृथा श्रमाय मां नियोजयसि । अत्रस्थस्तावज्जलार्थमागतान्मूषकान्भक्षयिष्यामि समं त्वया, मार्गोऽयं यतस्तेषाम् । अपरं यदि त्वां मुक्त्वास्य तीक्ष्णविषाणस्य वृषभस्य पृष्ठे गमिष्यामि, तदागत्यान्यःकश्चिदेतत्स्थानं समाश्रयिष्यति । नैतद्युज्यते कर्तुम् । उक्तश्च—

सियारने कहा—'प्रिये ! न मालूम कि ये अभी गिरेंगे अथवा नहीं ! तो फिर क्यों मुझे व्यर्थ कष्ट उठानेको कह रही हो ! यहाँपर बैठा हुआ मैं जल पीनेके लिये आये हुए चूहोंको तुम्हारे साथ रहकर खा जाऊँगा; क्योंकि यह सके आने-जानेका रास्ता है । दूसरे, तुम्हें छोड़कर यदि मैं इसके पीछे चला जाऊँ तो कोई दूसरा आकर इस स्थानपर अधिकार जमा लेगा । इसलिये ऐसा करना उचित नहीं है । कहा भी है—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च' ॥१४४॥

जो प्राणी निश्चित वस्तुको छोड़कर अनिश्चितकी ओर दौड़ता है, उसका निश्चित भी नष्ट हो जाता है और जो अनिश्चित है वह तो पहले ही नष्ट है ॥ १४४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रृगाल्याह—'भोः ! कापुरुषस्त्वम् । यत्किंचित्प्रासं तेनापि सन्तोषं करोषि । उक्तञ्च—

तब सियारिन बोली—'अरे ! तू आलसी है । जो कुछ पाता है, उसीसे सन्तोष कर लेता है ।' कहा भी है—

सुपूरा स्यात्कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः ।
सुसन्तुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति ॥१४५॥

छोटी नदी थोड़े ही जलसे भर जाती, चूहेकी अञ्जलि थोड़े ही अन्नसे भर जाती और आलसी पुरुष थोड़े ही आयसे सन्तुष्ट हो जाता है ॥१४५॥

तस्मात्पुरुषेण सदैवोत्साहवता भाव्यम् ।

उक्तञ्च—

इससे पुरुषको चाहिये कि वह सदैव उत्साही बना रहे । कहा भी है—

यत्रोत्साहसमारम्भो यत्रालस्यविहीनता ।
नयविक्रमसंयोगस्तत्र श्रीरचला ध्रुवम् ॥ १४६ ॥

जहाँ उत्साहपूर्वक काम होता रहता है, जहाँ आलस्यका अभाव रहता है और जहाँ नीति तथा बलका संयोग बना रहता है वहीं लक्ष्मी अटल होकर अवश्य निवास करती हैं ॥

तद्दैवमिति संचिन्त्य त्यजेन्नोद्योगमात्मनः ।
अनुयोगं विना तैलं तिलानां नोपजायते ॥१४७॥

इस कारण 'दैवको सोचकर (भाग्यमें जो होगा, सो होगा, अपना उद्योग न छोड़े; क्योंकि बिना उद्योग किये तिलोंसे भी तेल नहीं निकलता ॥ १४७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्यच्च । और भी—

यः स्तोकेनापि सन्तोषं कुरुते मन्दधीर्जनः ।
तस्य भाग्यविहीनस्य दत्ता श्रीरपि मार्ज्यते ॥ १४८॥

जो मूढ़ मनुष्य थोड़े धनसे ही सन्तोष कर लेता है, उस भाग्यहीन (अभागे) मनुष्यकी दूसरेसे प्राप्त हुई सम्पत्ति भी साफ (समाप्त) हो जाती है ॥ १४८ ॥

यच्च त्वं वदसि, एतौ पतिष्यतो न वेति, तदप्ययुक्तम् । उक्तञ्च—

और जो तुम यह बक रहे हो कि ये दोनों गिरेंगे या नहीं, यह भी ठीक नहीं है । कहा भी है—

कृतनिश्चयिनो वन्द्यास्तुङ्गिमा न प्रशस्यते ।
चातकः को वराकोऽयं यस्येन्द्रो वारिवाहकः॥१४९।

जिनका संकल्प दृढ़ है, ऐसे ऊँची कामना वालोंकी हमें प्रशंसा ही करनी चाहिये । यह दीन चातक कौन है ? जिसके लिये इन्द्र भी जल ढोते हैं ॥ १४९ ॥

अपरं मूषकमांसस्य 'निर्विण्णाहम् । एतौ च मांसपिण्डौ पतनप्रायौ दृश्येते । तत्सर्वथा नान्यथा कर्तव्यम्' इति । अथासौ तदाकर्ण्य मूषकप्राप्तिस्थानं परित्यज्य तीक्ष्णविषाणस्य पृष्ठमन्वगच्छत् । अथवा साध्विदमुच्यते—

१—चातक पक्षी दूसरे से जलकी इच्छा नहीं करता । केवल इन्द्रसे ही पानेकी कामना करता है। और इन्द्र भगवान् भी उसके दृढ़ संकल्पको देखकर स्वातीका जल दान करते ही हैं।

२—मूषकमांसभक्षणेन तृप्ता अतः परं तद्भक्षणे मम रुचिर्नास्तीति भावः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरे, अब मैं चूहेके मांससे ऊब गयी हूँ। ये दोनों मांसपिंड गिरनेपर ही हैं। अत एव तुम्हें किसी तरह भी इस कार्यसे पीछे नहीं हटना चाहिये।" ऐसा सुनकर वह सियार मूषक प्राप्तिका स्थान छोड़, तीक्ष्णविषाण (उस बैल) के पीछे लग गया अथवा किसीने ठीक ही कहा है:—

तावत्स्यात्सर्वकृत्येषु पुरुषोऽत्र स्वयं प्रभुः।
स्त्रीवाक्याङ्कुशविक्षुण्णो यावन्नो ध्रियते बलात् ॥

पुरुष इस संसारमें अपने कामोंका तभीतक स्वयं मालिक है, जबतक वह स्त्रीके वचनरूपी अंकुशसे घायल होकर हठपूर्वक पृथक् नहीं कर दिया जाता ॥ १५० ॥

अकृत्यं मन्यते कृत्यमगम्यं मन्यते सुगम्।
अभक्ष्यं मन्यते भक्ष्यं स्त्रीवाक्यप्रेरितो नरः ।१५१।

क्योंकि स्त्रीके वाक्यसे प्रेरित होकर पुरुष अकार्यको सुकार्य, अलभ्यको भी लभ्य और अभक्ष्य पदाथको भी भक्ष्य समझने लगता है ॥ १५१ ॥

एवं स तस्य पृष्ठतः सभार्यः परिभ्रमँश्चिरकाल-मनयत्। न च तयोः पतनमभूत्। ततश्च निर्वेदा-त्पञ्चदशे वर्षे शृगालः स्वभार्यामाह—

इस तरह उसके पीछे २ अपनी स्त्रीके साथ घूमते हुए उसने बहुत समय बिताया; किन्तु वे अण्डकोश गिरे नहीं। तत्पश्चात् पन्द्रहवें वर्षमें बड़े दुःखके साथ सियारने अपनी स्त्रीसे कहा—

शिथिलौ च सुबद्धौ च पततः पततो न वा।
निरीक्षितौ मया भद्रे! दश वर्षाणि पञ्च च ॥१५२॥

ये शिथिल किन्तु अच्छी तरह बँधे हुए इसके अण्डकोश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गिरेंगे या नहीं। हे प्रिये! मैंने इनको पन्द्रह वर्षों तक देखा ॥

तयोस्ततःपश्चादपि पातो न भविष्यति। तत्त-देव स्वस्थानं गच्छावः।' अतोऽहं ब्रवीमि—'शिथिलौ च' इति।

इसके बाद भी इनका पतन नहीं होगा। इसलिये चलो, उसी स्थानपर चलें। इसी कारण मैं कहता हूँ कि "शिथिलौ च सुवद्धौ च"........इत्यादि।

पुरुष आह—'यद्येवं तद्गच्छ भूयोऽपि वर्ध-मानपुरम्। तत्र द्वौ वणिक्पुत्रौ वसतः। एको गुप्तधनः, द्वितीय उपभुक्तधनः। ततस्तयोः स्वरूपं बुद्ध्वैकस्य वरः प्रार्थनीयः। यदि ते धनेन प्रयो-जनमभुक्तेन, ततस्त्वामपि गुप्तधनं करोमि। अथवा दत्तभोग्येन धनेन ते प्रयोजनं तदुपभुक्तधनं करोमि' इति। एवमुक्त्वाऽदर्शनं गतः।

पुरुषने कहा—"यदि ऐसा है तो फिर भी वर्धमान नगरमें जाओ। वहाँ बनियेके दो लड़के रहते हैं। उनमें एक का नाम है 'गुप्तधन' और दूसरेका नाम है 'उपभुक्तधन'। वहाँ उन दोनोंकी दशा देखकर किसी एकके समान होनेके लिये वर माँगना। यदि तुम्हें केवल धनकी आवश्यकता है उसके उपभोगकी नहीं, तो मैं तुम्हें 'गुप्तधन' बना दूँगा और यदि ऐसा धन चाहोगे जो दान एवं उपभोगमें आ सके, तो 'उपभुक्तधन' कर दूँगा।" ऐसा कहकर वह (पुरुष) वहीं अन्तर्धान (गुप्त) हो गया।

सोमिलकोऽपि विस्मितमना भूयोऽपि वर्धमा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नपुरं गतः । अथ सन्ध्यासमये श्रान्तः कथमपि तत्पुरं प्राप्तो गुप्तधनगृहं पृच्छन्कृच्छ्राल्लब्ध्वास्तमितसूर्ये प्रविष्टः ।

सोमिलक भी चकित-चित्त होकर पुनः वर्धमानपुरको लौट गया । बादमें संध्या-समय थका-थकाया वह किसी तरह उस नगरमें जा पहुँचा और लोगोंसे पूछता हुआ बड़े कष्टसे सूर्यास्त होनेपर गुप्तधनके घर गया ।

अथासौ भार्यापुत्रसमेतेन गुप्तधनेन निर्भर्त्स्यमाना हठाद्गृहं प्रविश्योपविष्टः । ततश्च भोजनवेलायां तस्यापि भक्तिवर्जितं किञ्चिदशनं दत्तम् ।

यद्यपि उस समय स्त्री-पुत्र-समेत गुप्तधनने इसे बहुत कुछ डराया—धमकाया, तथापि वह जबरदस्ती उसके गृहमें घुसकर बैठ गया । इसके बाद भोजन के समय अनादरपूर्वक सोमिलक को भी थोड़ा-सा भोजन दे दिया ।

ततश्च भुक्त्वा तत्रैव यावत्सुप्तो निशीथे पश्यति तावत्तावपि द्वौ पुरुषौ परस्परं मन्त्रयतः । तत्रैक आह—'भोः ! किं त्वयास्य गुप्तधनस्यान्योऽधिको व्ययो निर्मितो यत्सोमिलकस्यानेन भोजनं दत्तम् ? तदयुक्तं त्वया कृतम् ।' स आह—'भोः कर्मन् ! न ममात्र दोषः । मया पुरुषस्य लाभप्राप्तिर्दातव्या । तत्परिणतिः पुनस्त्वदायत्ता' इति ।

इसके बाद जब वह खा-पीकर सो गया, तब आधीरातको

१—निर्भर्त्स्यमानः=तिरस्क्रियमाणः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसने क्या देखा कि फिर वे दोनों पुरुष आपसमें वार्तालाप कर रहे हैं। उनमें एकने कहा—"हे कर्ता ! क्या तुमने गुप्तधनको उसके खर्चसे अधिक खर्च करनेका रास्ता बना दिया ? जो इसने सोमिलकको भोजन दे दिया। यदि ऐसा किया है तो तुमने ठीक नहीं किया।" तब दूसरे पुरुषने कहा—'हे कर्म ! इस विषयमें मेरा कोई भी दोष नहीं है; क्योंकि मुझे पुरुषके पुरुषार्थका फल देना ही चाहिये। फिर भी उसका फल तुम्हारे ही हाथ है।'

अथासौ यावदुत्तिष्ठति तावद्गुप्तधनो विषूचिकया खिद्यमानो रुजाभिभूतः क्षणं तिष्ठति। ततो द्वितीयेऽह्नि तद्दोषेण कृतोपवासः संजातः। सोमिलकोऽपि प्रभाते तद्गृहान्निष्क्रम्योपभुक्तधनगृहं गतः। तेनापि चाभ्युत्थानादिना सत्कृतो विहितभोजनाच्छादनसम्मानस्तस्यैव गृहे भव्यशय्यामारुह्य सुष्वाप। ततश्च निशीथे यावत्पश्यति तावत्तावेव द्वौ पुरुषौ मिथो मन्त्रयतः।

इसके बाद वह (सोमिलक) ज्योंही उठा, त्योंही गुप्तधन हैजा होनेके कारण थोड़ी देर तक पीड़ासे व्याकुल रहा। इसलिये दूसरे दिन उस दोषकी शान्तिके लिये उसको उपवास (भूखा) रहना पड़ा। सोमिलक भी सवेरे उठकर उपभुक्तधनके यहाँ पहुँचा। उस 'उपभुक्तधनने भी अभ्युत्थान आदि (स्वागतविधि) से उस (सोमिलक) का सत्कार किया और वह भी शिष्टाचारपूर्वक भोजन-आदिसे सन्तुष्ट होकर उसीके घर एक सुन्दर शय्यापर सो गया। आधीरातको पुनः उसने उन्हीं दोनों पुरुषोंको आपसमें बातचीत करते देखा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तयोरेक आह—'भोः कर्त्तः! अनेन सोमिलकस्योपकारं कुर्वता प्रभूतो व्ययः कृतः। तत्कथय कथमस्योद्धारकविधिर्भविष्यति। अनेन सर्वमेतद्व्यवहारकगृहात्समानीतम्।' स आह—'भोः कर्मन्! मम कृत्यमेतत्। परिणतिस्त्वदायत्ता' इति।

उसमें से एकने कहा—'हे कर्त्ता! इस उपभुक्तधनने तो सोमिलकका उपकार करके अधिक व्यय कर डाला है। तो बताओ, इस (ऋण) के उद्धारके लिये क्या उपाय करना होगा, क्योंकि इसके सत्कारके लिये सब वस्तुएँ उधार लायी गयीं हैं।' उसने उत्तर दिया—'हे कर्म! यह तो हमारा कर्त्तव्य ही है। लेकिन इसका फल तो तुम्हारे अधीन है!'

अथ प्रभातसमये राजपुरुषो राजप्रसादजं वित्तमादाय समायात उपभुक्तधनाय समर्पयामास। तद्दृष्ट्वा सोमिलकश्चिन्तयामास—'सञ्चयरहितोऽपि वरमेष उपभुक्तधनः, नासौ कदर्यो गुप्तधनः। उक्तञ्च—

इसके बाद सवेरे एक राजदूत राजाके यहाँसे पुरस्कार लेकर आया और गुप्तधनको दे दिया। यह देखकर सोमिलकने सोचा कि—'धनके संचयसे रहित होकर भी यह उपभुक्तधन अच्छा है; क्योंकि गुप्तधनके समान कायर नहीं है। कहा भी है—

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवित्तफलं श्रुतम्।
रतिपुत्रफला दारा दत्तभुक्तफलं धनम्॥ १५३॥

जिससे अग्निहोत्र रूपी फल उत्पन्न हो, वही वेदज्ञान है।

१-परिशोधप्रकारः, उत्तरणा इत्यर्थः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिससे मनुष्यका चरित्र सुधरे और धन प्राप्त हो, वही शास्त्रज्ञान है। जिससे शरीर को आनन्द मिले और पुत्ररूप फल प्राप्त हो, वही स्त्री है। जिससे दान और भोगरूपी फल मिले, वही धन वास्तविक धन है॥ १५३॥

तद्विधाता मां दत्तभुक्तधनं करोतु। न कार्यं मे गुप्तधनेन।' ततः सोमिलको दत्तभुक्तधनः सञ्जातः। अतोऽहं ब्रवीमि—'अर्थस्योपार्जनं कृत्वा' इति। तद्भद्र हिरण्यक! एवं ज्ञात्वा धनविषये सन्तापो न कार्यः। अथ विद्यमानमपि धनं भोज्यवन्ध्यतया तदविद्यमानं मन्तव्यम्। उक्तञ्च—

इसलिये विधाता मुझे दान और भोगरूपी फल प्राप्त करने वाला बना दे, मुझे गुप्तधनकी कोई आवश्यकता नहीं है। उसके बाद वह सोमिलक भी दान और भोग करनेवाला धनी बन गया। इसीसे मैं कहता हूँ-"अर्थस्योपार्जनं कृत्वा..." इति। तो अब हे भाई हिरण्यक! धनके बारेमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अतः यदि अपने पास धन-संग्रह हो और उसका उपभोग न किया जा सके, तो उसे नहींके बराबर ही समझना चाहिये। कहा भी है:—

गृहमध्यनिखातेन धनेन धनिनो यदि।
भवामः किं न तेनैव धनेन धनिनो वयम्॥ १५४॥

यदि घरमें गड़े हुए धनसे लोग धनी कहलाते हों, तो उसी धनसे हमलोग भी क्यों न धनी कहलावें!॥ १५४॥

तथा च। और भी—

उपार्जितानामर्थानां त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्॥ १५५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कमाये हुए धनका समुचित त्याग ही उसकी रक्षा करना है। जैसे तालाबका पानी बहता हो, तभी उसकी सार्थकता है, अन्यथा नहीं ॥ १५५ ॥

दातव्यं भोक्तव्यं धनविषये संचयो न कर्तव्यः।
पश्येह मधुकरीणां संचितमर्थं हरन्त्यन्ये ॥१५६॥

धनका दान और भोग करना चाहिये, केवल संचय ही नहीं करना चाहिये। देखो न ! मधु मक्खियोंके संचित द्रव्य (शहद) को दूसरे ही लोग निकाल लिया करते हैं ॥ १५६ ॥

अन्यच्च और भी—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

दान देना, भोग करना और नाश होना—धनकी ये तीन अवस्थाएँ हैं (अर्थात् तीन प्रकारसे धनका खर्च होता है) जो मनुष्य न दान देता है और न उसका अपने कामोंमें व्यय ही करता है, तो उस धनकी तीसरी गति (नाश) होती है ॥ १५७ ॥

एवं ज्ञात्वा विवेकिना न स्थित्यर्थं वित्तोपार्जनं कर्तव्यम् , यतो दुःखाय तत् । उक्तञ्च—

ऐसा समझ कर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि केवल रखनेके लिये ही धनका उपार्जन न करे; क्योंकि वह दुःख देनेके लिये ही होता है । कहा भी है—

धनादिकेषु विद्यन्ते येऽत्र मूर्खाः सुखाशया ।
तप्ता ग्रीष्मेण सेवन्ते शैत्यार्थं ते हुताशनम् १५८

१—'धनं दानाय भुक्तये' ।

२—खाय न खरचे सूम धन; चोर सबै लै जाय ।
पाछे ज्यों मधुमक्खिका; हाथ मले पछताय ॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो मूर्ख इस संसारमें धन—आदि विषयोंमें सुख पानेकी इच्छा रखते हैं, वे गर्मीसे सन्तप्त होकर ठण्ढकके लिये मानो अग्निकी उपासना करते हैं। अर्थात् जैसे गरमी अग्निसे शान्त नहीं होती, वैसेही धनसे सुख-शान्ति नहीं मिल सकती ॥१५८॥

सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति ।
कन्दैः फलैर्मुनिवरा गमयन्ति कालं
सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् १५९

साँप केवल हवा पीकर रहते हैं, फिर भी दुर्बल नहीं होते सूखे तृण खाकर भी बनैले हाथी बलवान् रहते हैं। ऋषिलोग कन्द–मूल एवं फल–पत्र खाकर ही दिन काटते हैं। सारांश यह कि मनुष्यके लिये सन्तोष ही एक बड़ा खजाना (कोष) है ॥ १५९ ॥ "वसन्ततिलकावृत्त" ।

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥ १६० ॥

सन्तोषरूपी अमृत पीकर तृप्त तथा निरीह चित्तवाले लोगों को जो आनन्द मिलता है, वह इधर–उधर दौड़ते हुए धन–लोलुपोंको कहाँ मिल सकता है ? ॥ १६० ॥

पीयूषमिव सन्तोषं पिबतां निर्वृतिः परा ।
दुःखं निरन्तरं पुंसामसन्तोषवतां पुनः ॥ १६१ ॥

सन्तोषको सुधाके समान समझकर उसका पान करनेवाले लोगोंको अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है, पर सन्तोष–रहित लोगोंको निरन्तर दुःख ही दुःख बना रहता है ॥ १६१ ॥

निरोधाच्चेतसोऽक्षाणि निरुधान्यखिलान्यपि ।
आच्छादिते रवौ मेघैराच्छन्नाः स्युर्गभस्तयः १६२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित्तको वशमें कर लेनेपर सब इन्द्रियाँ स्वयं ही वशमें हो जाती हैं। जैसे मेघोंद्वारा सूर्यके ढँक जानेपर उनकी समस्त किरणें भी ढँक जाती हैं ॥ १६२ ॥

वाञ्छाविच्छेदनं प्राहुः स्वास्थ्यं शान्ता महर्षयः ।
वाञ्छा निवर्तते नार्थैः पिपासेवाग्निसेवनैः॥१६३॥

शान्त महर्षियोंने इच्छा (वासना) का नाश कर देना ही सुख (का कारण) कहा है। वह इच्छा धनके द्वारा इस प्रकार निवृत्त नहीं हो सकती, जिस प्रकार अग्निके सेवनसे प्यास नहीं बुझती ॥ १६३ ॥

अनिन्द्यमपि निन्दन्ति स्तुवन्त्यस्तुत्यमुच्चकैः ।
स्वापतेयकृते मर्त्याः किं किं नाम न कुर्वते ॥१६४॥

धनके लिये मनुष्य क्या २ (अनर्थ) नहीं करते ! यहाँ तक कि वे प्रशंसनीय पुरुषकी निन्दा और निन्दनीय पुरुषकी प्रशंसा भी कर डालते हैं ॥ १६४ ॥

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा तस्यापि न शुभावहा ।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ॥ १६५ ॥

जिसको धर्म करनेके लिये धनकी इच्छा हो, उसके लिये भी यह सुखप्रद नहीं है; क्योंकि पाँक लगा कर धोनेकी अपेक्षा यही उचित है कि उसे लगने ही न दिया जाय ॥ १६५ ॥

दानेन तुल्यो निधिरस्ति नान्यो
लोभाच्च नान्योऽस्ति रिपुः पृथिव्याम् ।
विभूषणं शीलसमं न चान्य-
स्सन्तोषतुल्यं धनमस्ति नान्यत् ॥ १६६ ॥

इस भूतलमें दानके समान कोई निधि नहीं है, लोभके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समान कोई दूसरा शत्रु नहीं है, सच्चरित्रता (शिष्टाचार) के समान कोई आभूषण नहीं है और सन्तोषके समान दूसरा धन नहीं हैं ॥ १६६ ॥ 'उपजातिवृत्तम्'।

दारिद्र्यस्य पराभूतिर्यन्मानद्रविणाल्पता ।
जरद्गवधनः शर्वस्तथापि परमेश्वरः ॥१६७॥

सम्मानरूपी धनका कम होना ही परम दरिद्रता है (अर्थात् जिसके पास मान नहीं है, वही दरिद्र है); क्योंकि शिवजी के पास एक बूढ़ा बैल ही धन है, तो भी वे 'परमेश्वर' (महादेव) कहे जाते हैं ॥ १६७ ॥

सकृत्कन्दुकपातेन पतत्यार्यः पतन्नपि ।
तथा पतति मूर्खस्तु मृत्पिण्डपतनं यथा ॥ १६८ ॥

सज्जन लोग यदि गिरते भी हैं, तो उस गेंदकी तरह गिरते हैं, जो एक बार गिरकर उछल जाता है; किन्तु मूर्ख मनुष्य मिट्टी के ढेलेकी तरह गिरकर वहाँ ही रह जाता है ॥ १६८ ॥

एवं ज्ञात्वा भद्र ! त्वया सन्तोषः कार्यः' इति मन्थरकवचनमाकर्ण्य वायस आह—'मन्थरको यदेवं वदति तत्त्वया चित्ते कर्तव्यम् । अथवा साध्विदमुच्यते—

ऐसा जानकर 'हे भाई ! तुम्हें सन्तोष कर लेना चाहिये ।' तब मन्थरकको बात सुनकर कौएने कहा—'मन्थरक जो कह रहा है, उसे अपने हृदयमें धारण करना चाहिये । अथवा किसीने ठीक ही कहा हैः—

सुलभाः पुरुषा राजन् ! सततं प्रियवादिनः ।

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः १६९

हे राजन् ! मीठी बातें करनेवाले लोग सर्वदा सुलभ रहते हैं; किन्तु कड़वी और हित करनेवाली बात कहने तथा सुनने वाले दुर्लभ हैं ॥ १६९ ॥

अप्रियाण्यपि पथ्यानि ये वदन्ति नृणामिह ।
त एव सुहृदः प्रोक्ता अन्ये स्युर्नामधारकाः' १७०

जो मनुष्य अप्रिय, किन्तु कल्याण करनेवाली बात कहते हैं, वे ही मित्र वास्तवमें मित्र कहलाने योग्य हैं । बाकी सब नामात्र के लिये मित्र हैं ॥ १७० ॥

अथैवं जल्पतां तेषां चित्राङ्गो नाम हरिणो लुब्धकत्रासितस्तस्मिन्नेव सरसि प्रविष्टः। अथायान्तं ससम्भ्रममवलोक्य लघुपतनको वृक्षमारूढः । हिरण्यको निकटवर्तिनं शरस्तम्बं प्रविष्टः । मन्थरकः सलिलाशयमास्थितः ।

जब कि वे तीनों आपसमें इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, इसी बीच बहेलियेसे डराया हुआ 'चित्राङ्ग' नामक हिरन आया और उसी तालाबमें घुस पड़ा। शीघ्रतापूर्वक उसको आते देखकर लघुपतनक वृक्षपर जा बैठा। हिरण्यक पासके ही मूँज वनमें घुस गया और मन्थरक भी पानीमें कूद पड़ा।

अथ लघुपतनको मृगं ससयकपरिज्ञाय मन्थरक-मुवाच—'एह्येहि सखे मन्थरक ! मृगोऽयं तृषार्तोऽत्र

१—'हितं मनाहारि च दुर्लभं वचः' । (भारविः)

१—सरः' इत्यपि पाठः । शरनाम कतृणगुच्छम् (शरवणम्) मुंजवमित्यर्थः यथा—'सरस्तु मुञ्जो बाणाख्यो मुञ्जस्तेजनकः शरः' । (वाचस्पतिः)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समायातः सरसि प्रविष्टः, तस्य शब्दोऽयं न मानुषसम्भवः' इति ।

इसके बाद लघुपतनकने मृगको अच्छी तरह पहचान कर मन्थरकसे कहा—'हे मित्र मन्थरक ! यह प्यासा हुआ मृग जो आया और तालाबमें प्रवेश कर गया, उसीका यह शब्द है, किसी मनुष्य का नहीं है ।

तच्छ्रुत्वा मन्थरको देशकालोचितमाह—'भो लघुपतनक ! यथायं मृगो दृश्यते प्रभूतमुच्छ्वासमुद्वहन्नुद्भ्रान्तदृष्ट्या पृष्ठतोऽवलोकयति,तन्न तृषार्त एषः, नूनं लुब्धकत्रासितः । तज्ज्ञायतामस्य पृष्ठे लुब्धका आगच्छन्ति न वा' इति । उक्तञ्च—

यह सुनकर मन्थरकने देश कालका विचार करके कहा—'हे लघुपतनक ! यह मृग लम्बी साँस लेता हुआ, व्यग्र नेत्रोंसे पीछे की ओर जिस प्रकार देख रहा है, उससे यह मालूम होता है कि यह प्यासा नहीं है; बल्कि बहेलियोंसे निश्चय ही डराया गया है । इसलिये तुम पता लगाओ कि इसके पीछे बहेलिये आ रहे हैं या नहीं ? कहा भी है—

भयत्रस्तो नरः श्वासं प्रभूतं कुरुते मुहुः ।
दिशोऽवलोकयत्येव न स्वास्थ्यं व्रजति क्वचित् ।

भयसे प्रकम्पित मनुष्य बारम्बार लम्बी साँस लेता है और चारों ओर घबड़ाया हुआ देखता है । उसे कहीं भी स्थिरता नहीं मिलती ॥ १७१ ॥

तच्छ्रुत्वा चित्राङ्ग आह—'भो मन्थरक ! ज्ञातं त्वया सम्यङ् मे त्रासकारणम् ? अहं लुब्धकशर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रहारादुद्धारितः कृच्छ्रेणात्र समायातः। मम यूथं तैर्लुब्धकैर्व्यापादितं भविष्यति। तच्छरणागतस्य मे दर्शय किंचिदगम्यं स्थानं लुब्धकानाम्।' तदाकर्ण्य मन्थरक आह—'भोश्चित्राङ्ग! श्रूयतां नीतिशास्त्रम्—

यह सुनकर चित्राङ्गने कहा–'हे मन्थरक! तुमने मेरी व्याकुलताका कारण ठीक तरह समझ लिया! मैं बड़ी कठिनाईके साथ बहेलियेके बाणसे छूटकर यहाँ आया हूँ। उन व्याधोंने मेरे सब साथियोंको मार डाला होगा! इसलिये शरणमें आये हुए मुझे कोई ऐसा स्थान दिखाओ, जहाँ व्याधे न पहुँच सकें!' यह सुनकर मन्थरकने कहा—हे चित्राङ्ग! नीतिशास्त्र सुनो—

द्वावुपायाविह प्रोक्तौ विमुक्तौ शत्रुदर्शने।
हस्तयोश्चालनादेको द्वितीयः पादवेगजः ॥१७२॥

इस संसारमें शत्रुके समना होनेपर उससे छुटकारा पानेके लिये दो ही उपाय हैं। एक यह कि हाथोंको चलाना (यानी उसे ठोंकना) दूसरा यह कि वेगसे पैर चलाना (अर्थात् भाग निकलना)॥ १७२॥

तद्गम्यतां शीघ्रं सघनं वनम्, यावदत्रापि नागच्छन्ति ते दुरात्मानो लुब्धकाः।' अत्रान्तरे लघुपतनकः सत्वरमभ्युपेत्योवाच–'भो मन्थरक! गतास्ते लुब्धकाः स्वगृहोन्मुखाः प्रचुरमांसपिण्डधारिणः। तच्चित्राङ्ग! त्वं विश्रब्धो वनाद्बहिर्भव।'

इसलिये अभी जबतक वे दुष्ट वधिक यहाँ आ न जाँय,

१–दूरतः पलायनमिति भावः। २–विश्वस्तः शंकारहित इत्यर्थः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तबतक तुमलोग इसी घने जंगलमें घुस जाओ।' इसी बीच लघुपतनकने शीघ्रही आकर कहा—'हे मंथरक ! वे बहेलिये बहुत-सा मांस लेकर अपने घरकी ओर चले गये। अतः हे ! चित्राङ्ग ! तुम निश्चिन्त होकर बनसे बाहर निकल जाओ।"

ततस्ते चत्वारोऽपि मित्रभावमाश्रितास्तस्मिन्सरसि मध्याह्नसमये वृक्षच्छायाया अधस्तात्सुभाषितगोष्ठीसुखमनुभवन्तः सुखेन कालं नयन्ति। अथवा युक्तमेतदुच्यते—

इसके बाद वे चारो आपसमें मित्र बन गये और मध्याह्न कालमें सरोवरके पासवाले वृक्षकी छायामें अच्छी २ बातों द्वारा सत्संग रूपी सुखका अनुभव करते हुए, आनन्दके साथ कालयापन करने लगे। किसीने यह ठीक ही कहा है—

सुभाषितरसास्वाद[1]-बद्धरोमाञ्चकञ्चुकाः ।
विनापि सङ्गमं स्त्रीणां सुधियः सुखमासते ॥१७३॥

अच्छी २ बातोंके रसास्वादनसे जिन लोगोंके शरीरमें रोमाञ्चरूपी कञ्चुक (कवच) बँध जाते हैं-ऐसे पण्डितलोग बिना स्त्रीके ही सुखपूर्वक रहते हैं। (तात्पर्य यह कि स्त्रियोंके संसर्गसे जो आनन्द मिलता है, उसे वे सुमधुर सूक्तियोंके रसास्वादनसे ही प्राप्त कर लिया करते हैं) ॥ १७३ ॥

सुभाषितमयद्रव्यसंग्रहं न करोति यः ।
स तु प्रस्तावयज्ञेषु कां प्रदास्यति दक्षिणाम् १७४

जो मनुष्य सुभाषित रूपी धनका संग्रह नहीं करता, वह प्रस्तावरूपी (वार्तालाप) यज्ञमें क्या दक्षिणा देगा ? ॥ १७४ ॥

१ सुभाषितस्य मधुरालापयुक्तवचनस्य रसास्वादेन इति शेषः। एतदर्थं 'सुभाषितरत्न-भण्डागार' इति नामको ग्रन्थोऽवलोकनीयः। (द्विजेन्द्रः)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा च-और भी-

सकृदुक्तं न गृह्णाति स्वयं वा न करोति यः ।
यस्य सम्पुटिका नास्ति कुतस्तस्य सुभाषितम् १७५

जो मनुष्य एक बार कही हुई बातको मनमें नहीं धारण कर लेता, या स्वयं अच्छी बातें नहीं करता और बोलते समय जिसके वचनोंमें सम्पुटिका अर्थात् वाक्यों का अवरोध (रुकावट) नहीं होता, उसके पास सुभाषित आवेंगेही कहाँसे ? अर्थात् वह मधुर-भाषी नहीं हो सकता ॥ १७५ ॥

अथैकस्मिन्नहनि गोष्ठीसमये चित्राङ्गो नायातः अथ ते व्याकुलीभूताः परस्परं जल्पितुमारब्धाः- 'अहो ! किमद्य सुहृन्न समायातः ? किं सिंहादिभिः क्वापि व्यापादितः, उत लुब्धकैः, अथवा अनले प्रपतितो गर्तविषमे वा नवतृणलौल्यात्' इति । अथवा साध्विदमुच्यते—

एक दिन सभामें चित्राङ्ग (मृग) नहीं आया । इससे वे तीनों व्याकुल होकर आपसमें बातें करने लगे—"अहो ! आज वह मित्र क्यों नहीं आया ? क्या वह सिंह आदि द्वारा मारा तो नहीं गया ? अथवा बहेलियोंने कहीं फँसा तो नहीं लिया ? किंवा दावानलमें या नई-नई घासोंके लोभसे किसी भयानक गड्ढेमें तो नहीं गिर गया ? अथवा यह किसीने ठीक ही कहा है—

स्वगृहोद्यानगतेऽपि स्निग्धैः पापं विशङ्क्यते मोहात् ।
किमु दृष्टबह्वपायप्रतिभयकान्तारमध्यस्थे ॥ १७६ ॥

अपने घरके समीप किसी बगीचेमें जानेपर भी मोहवश मित्रगण उसके लिये अनिष्ट-चिन्तन एवं कुभावनाकी आशंका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करने लगते हैं। फिर विविध प्रकारके भयसे व्याप्त वनमें जानेपर क्या बात है ? ॥ १७६ ॥ 'आर्यावृत्त' ।

अथ मन्थरको वायसमाह—'भो लघुपतनक ! अहं हिरण्यकश्च तावद्द्वावप्यशक्तौ तस्यान्वेषणं कर्तुं मन्दगतित्वात्। तद्गत्वा त्वमरण्यं शोधय यदि कुत्रचित्तं जीवन्तं पश्यसि ।'

इसके अनन्तर मन्थरकने कौएसे कहा—"हे लघुपतनक ! हमलोग मन्द-गतिके हैं। इस कारण उसे खोजनेमें असमर्थ हैं। इससे तुम वनमें जाओ और यदि वह कहीं जीवित हो तो उसकी खोज करो।"

तदाकरण्य लघुपतनको नातिदूरे यावद्गच्छति तावत्पल्वलतीरे चित्राङ्गः कूटपाशनियन्त्रितस्तिष्ठति। तं दृष्ट्वा शोकव्याकुलितमनास्तमवोचत्—'भद्र ! किमिदम् ?' चित्राङ्गोऽपि वायसमवलोक्य विशेषेण दुःखितमना बभूव। अथवा युक्तमेतत्—

यह सुनकर लघुपतनक थोड़ी दूर ही गया था कि चित्राङ्ग को एक सरोवर के किनारे कपटरूपी जालमें बँधा देख, व्याकुल मन होकर लघुपतनकने कहा—"हे भाई ! यह क्या हुआ ? चित्राङ्ग भी कौएको देखकर बहुत दुःखी हुआ। ऐसा होना ठीक ही था; क्योंकि—

अपि मन्दत्वमापन्नो नष्टो वापीष्टदर्शनात्।
प्रायेण प्राणिनां भूयो दुःखावेगोऽधिको भवेत् ॥

कुछ कम हुआ या नष्ट हुआ भी दुःखका आवेग, अपने प्रिय मित्रोंके दर्शनसे फिर भी अधिक बढ़ जाता है ॥ १७७ ॥

१—अन्वेषय; अवलोकयेति भावः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततश्च वाक्यावसाने चित्राङ्गो लघुपतनकमाह— 'भो मित्र! सञ्जातोऽयं तावन्मम मृत्युः। तद्युक्तं सम्पन्नं यद्भवता सह मे दर्शनं सञ्जातम्। उक्तञ्च—

उसके बाद आँसू रुकनेपर चित्राङ्गने लघुपतनकसे कहा—'हे मित्र! अब हमारी मृत्यु हो रही है। इसलिये यह बहुत ही अच्छा हुआ जो मुझे आपके दर्शन हो गये। कहा भी है—

प्राणात्यये समुत्पन्ने यदि स्यान्मित्रदर्शनम्।
तद्द्वाभ्यां सुखदं पश्चाज्जीवितोऽपि मृतस्य च ॥

प्राण-संकट आनेपर यदि मित्रका दर्शन हो जाय तो (उसके बाद) जीने या मरनेमें आनन्द ही होता है ॥ १७८ ॥

तत्क्षन्तव्यं यन्मया प्रणयात्सुभाषितगोष्ठीष्वभिहितम्। तथा हिरण्यकमन्थरकौ मम वाक्याद्वाच्यौ—

अतः सुभाषित-सभा (आमोद-प्रमोद) के समय प्रेमसे मैंने जो कुछ कहा हो, उसे क्षमा करियेगा। साथ ही हिरण्यक तथा मन्थरकको भी मेरी ओरसे यह बात कह दीजियेगा, कि—

अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि दुरुक्तं यदुदाहृतम्।
तत्क्षन्तव्यं युवाभ्यां मे कृत्वा प्रीतिपरं मनः ॥ १७९ ॥

अनजानसे या जानबूझकर भी यदि मैंने आपको कुछ अनुचित बातें कह दी हों, तो आप दोनों मुझपर प्रेममय हृदयसे क्षमा कर देंगे ॥ १७९ ॥

तच्छ्रुत्वा लघुपतनक आह—'भद्र! न भेतव्यमस्मद्विधैर्विद्यमानैः। यावदहं द्रुततरं हिरण्यकं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गृहीत्वागच्छामि । अपरं ये सत्पुरुषा भवन्ति ते व्यसने न व्याकुलत्वमुपयान्ति । उक्तञ्च—

यह सुनकर कौएने कहा—"भद्र ! हमारे जैसे मित्रके रहते हुए आप डरें नहीं, जबतक मैं शीघ्रही हिरण्यकको लेकर आता हूँ। और दूसरी बात यह है कि जो सज्जन पुरुष होते हैं, वे दुःख आनेपर भी घबड़ाते नहीं। कहा भी है—

सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च भीरुत्वम्
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम् ॥'

सम्पत्ति प्राप्त होनेपर जिसे हर्ष नहीं होता, विपत्तिमें कोई विषाद नहीं होता और संग्राम-भूमिमें जिसको भय नहीं मालूम होता, ऐसे विरले ही पुत्रको माता जन्म देती है ॥

एवमुक्त्वा लघुपतनकश्चित्राङ्गमाश्वास्य यत्र हिरण्यकमन्थरकौ तिष्ठतस्तत्र गत्वा सर्वं चित्राङ्गपाशपतनं कथितवान् । हिरण्यकश्च चित्राङ्गपाशमोक्षणं प्रति कृतनिश्चयं पृष्ठमारोप्य भूयोऽपि सत्वरं चित्राङ्गसमीपे गतः । सोऽपि मूषकमवलोक्य किंचिज्जीविताशया संश्लिष्ट आह—

ऐसा कहकर लघुपतनकने चित्रांगको धैर्य्य दिया और वहाँसे उस स्थानपर—जहां कि हिरण्यक और मन्थरक बैठे थे-जाकर चित्रांगके फँसनेकी बातें कह सुनायीं। जब हिरण्यकने चित्रांगके बन्धन काटनेका निश्चय कर लिया, तब उसे पीठपर बैठाकर वह तुरन्त चित्रांगके पास लौट गया। मृग भी चूहेको देखकर जीवनकी कुछ आशासे युक्त होकर कहने लगा—

'आपन्नाशाय विबुधैः कर्तव्याः सुहृदोऽमलाः ।
न तरत्यापदं कश्चिद्योऽत्र मित्रविवर्जितः ॥ १८१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विद्वान् लोगोंको चाहिये कि आपत्तिका नाश करनेके लिये कुछ पवित्र मित्र अवश्य बना लिया करें; क्योंकि संसारमें जो मनुष्य मित्रसे रहित है, वह आपत्तिसे पार नहीं जा सकता ॥१८१॥

हिरण्यक आह–'भद्र ! त्वं तावन्नीतिशास्त्रज्ञो दक्षमतिः । तत्कथमत्र कूटपाशे पतितः ?' स आह–'भोः ! न कालोऽयं विवादस्य । तन्न यावत्स पापात्मा लुब्धकः समभ्येति तावद्‌द्रुततरं कर्तयेमं मत्पदपाशम् ।'

हिरण्यकने कहा—"मित्र ! तुम तो नीतिशास्त्रके ज्ञाता और विलक्षण बुद्धिवाले हो । फिर कैसे इस कपट-जालमें आ फँसे ?" उसने कहा—'भाई ! यह बहस करनेका समय नहीं है । अतः जबतक वह दुष्ट बहेलिया आ न जाय, तबतक तुम शीघ्रही मेरे पैरका बन्धन काट दो ।'

तदाकर्ण्य विहस्याह हिरण्यकः—किं मय्यपि समायाते लुब्धकाद्बिभेषि ? ततः शास्त्रं प्रति महती मे विरक्तिः सम्पन्ना, यद्भवद्विधा अपि नीतिशास्त्रविद एनामवस्थां प्राप्नुवन्ति । तेन त्वां पृच्छामि ।' स आह–'भद्र ! कर्मणा बुद्धिरपि हन्यते । उक्तञ्च–

यह सुनते ही हिरण्यकने हँसकर कहा—"क्या मेरे आने पर भी तुम व्याधसे डरते हो ? इसीसे तो शास्त्रके प्रति मेरा उत्कट वैराग्य होगया है, जबकि तुम्हारे जैसे नीतिशास्त्रके जानने-वाले भी ऐसी दशाको प्राप्त हो जाते हैं । इस कारण मैं तुमसे पूछता हूँ ।" उसने कहा—"भाई ! कर्म (भाग्य) के फेरसे बुद्धि भी मारी जाती है ।" कहा भी है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृतान्तपाशबद्धानां दैवोपहतचेतसाम् ।
बुद्धयः कुब्जगामिन्यो भवन्ति महतामपि ।१८२।

यमराजके बन्धनमें बँधे हुए एवं प्रारब्धसे नष्ट चेतना वाले बड़े-बड़े लोगोंकी बुद्धि भी विपरीत हो जाती है ॥ १८२ ॥

विधात्रा रचिता या सा ललाटेऽक्षरमालिका ।
न तां मार्जयितुं शक्ताः स्वबुद्ध्याप्यतिपण्डिताः'॥

क्योंकि विधाताने ललाटमें जो अक्षरमालिका (भाग्यरेखा) लिख दी है, उसको बड़े-बड़े पण्डित भी अपने बुद्धि-बलसे नहीं मिटा सकते ॥ १८३ ॥

एवं तयोः प्रवदतोः सुहृद्व्यसनसन्तप्तहृदयो मन्थरकः शनैः शनैस्तं प्रदेशमाजगाम । तं दृष्ट्वा लघुपतनको हिरण्यकमाह-'अहो ! न शोभनमापतितम् ।' हिरण्यक आह-'किं स लुब्धकः समायाति?' स आह-'आस्तां तावल्लुब्धकवार्त्ता। एष मन्थरकः समागच्छति । तदनीतिरनुष्ठितानेन,यतो वयमप्यस्य कारणान्नूनं व्यापादनं यास्यामो यदि स पापात्मा लुब्धकः समागमिष्यति । तदहं तावत्खमुत्पतिष्यामि । त्वं पुनर्बिलं प्रविश्यात्मानं रक्षयिष्यसि । चित्राङ्गोऽपि वेगेन दिगन्तरं यास्यति। एष पुनर्जलचरः स्थले कथं भविष्यतीति व्याकुलोऽस्मि ।'

इस तरह वे दोनों बात-चीत कर ही रहे थे कि इतनेमें मित्र के दुःखसे दुःखित हृदयवाला वह कछुआ भी धीरे-धीरे उस स्थानपर आ पहुँचा । उसे देखकर लघुपतनकने हिरण्यकसे कहा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'ओह ! यह ठीक नहीं हुआ !' हिरण्यकने कहा—'क्या बहेलिया आरहा है, उसने कहा—'व्याधे की चर्चा तो दूर रही, वह मन्थरक चला आता है, सो इसने अन्याय किया; क्योंकि यदि कहीं बहेलिया आगया तो इसके कारण हमलोग भी मारे जायेंगे। अस्तु, मैं तो आकाश में उड़ जाऊँगा, तुम किसी बिलमें घुसकर अपनेको बचा लोगे और चित्राङ्ग भी वेगके साथ किसी तरफ भाग निकलेगा; किन्तु यह बेचारा जलचर जन्तु स्थलपर कैसे बचेगा ? यही सोचकर मैं व्याकुल हूँ।"

अत्रान्तरे प्राप्तोऽयं मन्थरकः। हिरण्यक आह-भद्र ! न युक्तमनुष्ठितं भवता, यदत्र समायातः। तद्भूयोऽपि द्रुततरं गम्यताम्, यावदसौ लुब्धको न समायाति।' मन्थरक आह-'भद्र ! किं करोमि न शक्नोमि तत्रस्थो मित्रव्यसनाग्निदाहं सोढुम्। तेनाहमत्रागतः। अथवा साध्विदमुच्यते—

इसी बीच मन्थरक भी आ गया। हिरण्यकने कहा—"भद्र ! तुमने ठीक नहीं किया, जो यहाँ चले आये। इसलिये तुम तबतक शीघ्र ही लौट जाओ, जबतक बहेलिया न आ जाय।" मन्थरकने कहा—"भाई ! क्या करूँ, वहाँ बैठे-बैठे मैं मित्रके दुःखरूपी अग्निको नहीं सह सका। इसीसे तो यहाँ चला आया। अथवा यह ठीक ही कहा है:—

दयितजनविप्रयोगा वित्तवियोगाश्च केन सह्याःस्युः।
यदि सुमहौषधकल्पो वयस्यजनसंगमो न स्यात् ॥

यदि एक महौषधके समान (हितकारी) किसी प्रियजन का सम्मिलन न हो, तो मित्र एवं धनके वियोगको कौन सह सकता है ? (अर्थात् कोई नहीं) ॥ १८४ ॥ "आर्यावृत्त" ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वरं प्राणपरित्यागो न वियोगो भवादृशैः ।
प्राणा जन्मान्तरे भूयो भवन्ति न भवद्विधाः ॥

प्राणोंका परित्याग कर देना अच्छा है, किन्तु आप जैसे मित्रोंका साथ छूटना अच्छा नहीं; क्योंकि प्राण तो जन्मान्तर में भी मिल जायेंगे, किन्तु आप जैसे मित्र नहीं मिलेंगे ॥ १८५ ॥

एवं तस्य प्रवदत आकर्णपूरितशरासनो लुब्धकोऽप्युपागतः । तं दृष्ट्वा मूषकेण तस्य स्नायुपाशस्तत्क्षणात्खण्डितः । अत्रान्तरे चित्राङ्गः सत्वरं पृष्ठमवलोकयन्प्रधावितः । लघुपतनको वृक्षमारूढः । हिरण्यकश्च समीपवर्तिबिलं प्रविष्टः ।

ऐसा वह कह ही रहा था कि (वाण चढ़े हुए) धनुषकी प्रत्यञ्चाको कानों तक खींचे हुए वह बहेलिया भी वहाँ आ पहुँचा। उसे देखकर हिरण्यक ने तत्काल ही चित्राङ्गका बन्धन काट दिया । इसी बीच चित्राङ्ग अपने पीछे देखता हुआ वेगके साथ भाग निकला, कौआ पेड़पर चढ़ गया और हिरण्यक भी पास ही एक बिलमें घुस गया ।

अथासौ लुब्धको मृगगमनाद्विषण्णवदनो व्यर्थश्रमस्तं मन्थरकं मन्दं मन्दं स्थलमध्ये गच्छन्तं दृष्टवान्, अचिन्तयच्च—'यद्यपि कुरङ्गो धात्रापहृतस्तथाप्ययं कूर्म आहारार्थं सम्पादितः । तदद्यास्यामिषेण मे कुटुम्बस्याहारनिर्वृत्तिर्भविष्यति ।'

इसके पश्चात् बहेलिया हिरणके भाग जानेसे अपने परिश्रम को व्यर्थ समझकर मलिन-मुख (उदास) हो गया और जमीन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर मन्थरकको धीरे-धीरे जाते देखकर सोचने लगा—"यद्यपि विधाताने मुझसे हिरण्य छीन लिया, तथापि भोजनमात्रके लिये यह कछुआ तो भेज ही दिया है ! अतः इसके माँस से आज मेरे परिवारका भोजन-निर्वाह हो जायगा।'

एवं विचिन्त्य तं दर्भैः संछाद्य धनुषि समारोप्य स्कन्धे कृत्वा गृहं प्रति प्रस्थितः। अत्रान्तरे तं नीयमानमवलोक्य हिरण्यको दुःखाकुलः पर्यदेवयत्—'कष्टं भोः, कष्टमापतितम् !

ऐसा सोच, उसने उसे कुशाओंसे ढाँककर धनुषमें लटका लिया और कन्धेपर रखकर घरकी ओर चल दिया, इसके अनन्तर मन्थरकको लिये जाते देख, दुःखसे व्याकुल होकर हिरण्यक चिल्लाने लगा—"हा कष्ट ! महान् कष्ट आगया !!

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं
गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे
छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥ १८६ ॥

समुद्रके पारकी नाई जबतक मैं एक दुःखसे पार नहीं हो पाता, तबतक मेरे लिये दूसरा दुःख उपस्थित हो जाता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि छिद्र होनेपर अनेक अनर्थ आ जाते हैं ॥ १८६ ॥ "इन्द्रवज्रावृत्त"

यावदस्खलितं तावत्सुखं याति समे पथि।
स्खलिते च समुत्पन्ने विषमं च पदे पदे ॥ १८७॥

जबतक कोई गिरता नही, तबतक समतल भूमिपर सुखसे चलता रहता है, पर जब वह एक बार भी गिर जाता है, तब एक पग चलना भी कठिन हो जाता है ॥ १८७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यन्नम्रं सरलं चापि तच्चापत्सु न सीदति ।
धनुर्मित्रं कलत्रं च दुर्लभं शुद्धवंशजम् ॥ १८८ ॥

जो नम्र तथा सरल होता है, वह आपत्तियोंके पड़नेपर भी दुःखित नहीं होता । अत एव शुद्ध वंशमें उत्पन्न धनुष, मित्र और कलत्र (भार्या) ये तीनों दुर्लभ हैं ॥ १८८ ॥

न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मजे ।
विश्रम्भस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे निरन्तरे १८९

जो विश्वास अपने अभिन्न मित्रमें होता है, वह न मातामें न स्त्रीमें, न सगे भाईमें और न पुत्रमें ही होता है ॥ १८९ ॥

यदि तावत्कृतान्तेन मे धननाशो विहितस्तन्मार्गश्रान्तस्य मे विश्रामभूतं मित्रं कस्मादपहृतम् ? अपरमपि मित्रं परं मन्थरकसमं न स्यात् ।

यदि विधाताने मेरे धनका नाश कर दिया तो मार्गमें थके हुए (मेरे जैसे पथिकके) विश्वासभूत मित्रको क्यों छीन लिया ? मन्थरकके समान दूसरा कोई मित्र भी तो नहीं हो सकता ! उक्तञ्च—कहा भी है—

असम्पत्तौ परो लाभो गुह्यस्य कथनं तथा ।
आपद्विमोक्षणं चैव मित्रस्यैतत्फलत्रयम् ॥१९०॥

धनका लाभ न होनेपर भी महालाभ प्रकट करना, गुप्तबातें कह देना और आपत्तिसे छुड़ा लेना, मित्रके ये ही तो तीन फल हैं ॥ १९० ॥

१—वंश=बाँस । बाँसका बना हुआ धनुष घुनता नहीं और दृढ़ एवं लचील भी होता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदस्य पश्चान्नान्यः सुहृन्मे । तत्किं ममोपर्यनवरतं व्यसनशरैर्वर्षति हन्त विधिः ! यत आदौ तावद्वित्तनाशः, ततः परिवारभ्रंशः, ततो देशत्यागः, ततो मित्रवियोग इति । अथवा स्वरूपमेतत्सर्वेषामेव जन्तूनां जीवितधर्मस्य । उक्तश्च—

सो, इसके बाद अब कोई मेरा अन्य मित्र नहीं है । फिर भी न मालूम क्यों विधाता मेरे ऊपर निरन्तर दुःखरूपी बाणों की वर्षा करता है ! क्योंकि पहले धनका नाश हुआ, तत्पश्चात् परिवारसे अलग होना पड़ा, फिर देश-त्याग हुआ, इसके बाद मित्रका वियोग हुआ । हाय ! संसारी प्राणियोंके जीवन-धर्मका स्वरूप ही ऐसा है । कहा भी है—

कायः सन्निहितापायः सम्पदः क्षणभंगुराः ।
समागमाः सापगमाः सर्वेषामेव देहिनाम् ॥१६१॥

सब प्राणियोंका शरीर शीघ्र विनाश होनेवाला है, सम्पत्तियाँ क्षणभंगुर हैं और समस्त संयोग (मित्रता आदि) वियोगमय हैं ॥ १६१ ॥

तथा च । और भी—

क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णं
धनक्षये दीप्यति जाठराग्निः ।
आपत्सु वैराणि समुल्लसन्ति
छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥ १६२ ॥

जिस जगह चोट लगी रहती है, वहीं ही बार-बार चोट लगती रहती है । धनके नष्ट हो जानेपर पेटकी ज्वाला तीव्र हो जाती है । आपत्तिके समय शत्रुता भी अधिक बढ़ जाती है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(कहने का भाव यह कि) छिद्र हो जानेपर बहुतेरे अनर्थ प्रकट हो जाया करते हैं ॥ १६२ ॥ 'उपजातिवृत्त' ।

अहो ! साधूक्तं केनापि—

अहो ! किसीने ठीक ही कहा है—

प्राप्ते भये परित्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥ १६३ ॥

भय प्राप्त होनेपर रक्षा करनेवाला और प्रेम तथा विश्वास का एकमात्र पात्र "मित्र" ऐसे दो अक्षर रूपी रत्नको न जाने किसने बनाया है ! ॥ १६३ ॥

अत्रान्तरे [२]आक्रन्दपरौ चित्राङ्गलघुपतनकौ तत्रैव समायातौ । अथ हिरण्यक आह–'अहो, किं वृथा प्रलपितेन ? तद्यावदेष मन्थरको दृष्टिगोचरान्न नीयते, तावदस्य [३]मोक्षोपायश्चिन्त्यताम्' इति । उक्तञ्च—

इसके बाद रोते–कलपते हुए चित्राङ्ग और लघुपतनक, ये दोनों भी वहाँ आ पहुँचे । तब हिरण्यकने कहा—"अहो ! इस तरह व्यर्थ रोने–पीटनेसे क्या लाभ ? सो जब तक यह मन्थरक हम लोगोंकी आँखोंसे ओझल नहीं हो जाय, उसके भीतर ही इसको छुड़ानेका उपाय सोचो । कहा भी है—

व्यसनं प्राप्य यो मोहात्केवलं परिदेवयेत् ।
क्रन्दनं वर्धयत्येव तस्यान्तं नाधिगच्छति ॥१६४॥

जो प्राणी मूर्खतावश दुःख पड़नेपर केवल रोता है, वह दुःखको बढ़ाता ही है, उसका अन्त नहीं कर पाता ॥१६४॥

१–इसी तंत्र का ६२वां श्लोक देखिये । (२) रुदन्तौ (३) रक्षणोपायः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केवलं व्यसनस्योक्तं भेषजं नयपण्डितैः ।
तस्योच्छेदसमारम्भो विषादपरिवर्जनम् ॥ १६५ ॥

नीति-शास्त्रके पण्डितोंने दुःखके दूर करनेकी यही दवा बतलायी है कि हितेच्छु प्राणी विषादको छोड़कर उस दुःखको दूर करनेका उपाय सोचे ॥ १६५ ॥

अन्यच्च । और भी—

अतीतलाभस्य सुरक्षणार्थं
भविष्यलाभस्य च सङ्गमार्थम् ।
आपत्प्रपन्नस्य च मोक्षणार्थं
यन्मन्त्र्यतेऽसौ परमो हि मन्त्रः' ॥१६६॥

जो लाभ हो चुका हो उसकी रक्षाके लिये, भविष्यमें जो लाभ होनेवाला हो, उसे पानेके लिये तथा आपत्तिमें फँसे हुए का उद्धार करनेके लिये जो विचार किया जाता है, वास्तवमें वही श्रेष्ठ मंत्र (विचार) है ॥ १६६ ॥ "उपजातिवृत्त" ।

तच्छ्रुत्वा वायस आह—'भोः! यद्येवं तत्क्रियतां मद्वचः। एष चित्रांगोऽस्य मार्गे गत्वा किञ्चित्पल्वल[1]मासाद्य तस्य तीरे निश्चेतनो भूत्वा पततु। अहमप्यस्य शिरसि समारुह्य मन्दैश्चञ्चुप्रहारैः शिर उल्लेखयिष्यामि, येनासौ दुष्टलुब्धकोऽमुं मृतं मत्वा मम चञ्चुप्रहरणप्रत्ययेन मन्थरकं भूमौ क्षिप्त्वा मृगार्थं परिधाविष्यति। अत्रान्तरे त्वया

१—थोड़े जलवाला तालाब। 'पल्वलोऽल्पजलाशयः' इत्यमरः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दर्भमयानि पाशानि खण्डनीयानि, येनासौ मन्थरको द्रुततरं पल्वलं प्रविशति ।'

यह सुनकर कौएने कहा–"यदि ऐसा है, तो मेरी बात मानो । यह चित्राङ्ग इस बहेलियेके रास्तेमें किसी तलैयाके पास बेहोश होकर लोट जाय । मैं इसके मस्तकपर बैठ कर धीरे-धीरे चोंच मारता हुआ इसका मस्तक खोदूंगा । मेरे चञ्चु-प्रहारसे यह बहेलिया इस मृगको मरा समझ, मन्थरक को भूमिमें रखकर मृगके लिये दौड़ पड़ेगा । इसी बीच तुम उस कुशके बने जाल को काट डालना, जिससे मन्थरक बहुत शीघ्र ही तालाबमें कूद जाय ।"

चित्राङ्ग आह–'भोः ! भद्रोऽयं त्वया दृष्टो मन्त्रः । नूनं मन्थरकोऽयं मुक्तो मन्तव्य इति । उक्तञ्च—

चित्राङ्गने कहा—'तुमने यह बहुत ही अच्छा उपाय सोचा है । अब अवश्य ही यह मन्थरक छूट जायगा-यह जानना चाहिये । क्योंकि कहा भी है—'

सिद्धं वा यदि वाऽसिद्धं चित्तोत्साहो निवेदयेत् ।
प्रथमं सर्वजन्तूनां तत्प्राज्ञो वेत्ति नेतरः ॥ १९७ ॥

अमुक कार्य सिद्ध होगा या नहीं, यह सब प्राणियोंको अपने मनका उत्साह ही बतला देता है; किन्तु इस बातको समझदार लोग ही समझ पाते हैं और लोग नहीं ॥ १९७ ॥

तदेवं क्रियताम्' इति । तथानुष्ठिते स लुब्धकस्तथैव मार्गासन्नपल्वलतीरस्थं चित्राङ्गं वायससनाथमपश्यत् । तं दृष्ट्वा हर्षितमना व्यचिन्तयत-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'नूनं पाशबन्धनवेदनया वराकोऽयं मृगः सावशेष-जीवितः पाशं त्रोटयित्वा कथमप्येतद्वनान्तरं याव-त्प्रविष्टस्तावन्मृतः। तद्वश्योऽयं मे कच्छपः सुयन्त्रि-तत्वात्। तदेनमपि तावद् गृह्णामि।'

तो ऐसा ही करो।" ऐसा करनेपर उस व्याधेने मार्गमें ही उस तालाबके पास कौएके साथ चित्राङ्गको देखा। उसे देखकर उसने प्रसन्न मनसे सोचा—'अवश्य ही यह बेचारा मृग जालके बन्धन की वेदनासे किसी तरह उसे काटकर मृतप्राय अवस्थामें जैसेही इस दूसरे वनमें पहुँचा, वैसेही मर गया है। अच्छी तरह बँधे रहनेके कारण यह कछुआ तो मेरे वशमें है ही, अब इसे भी ले लूँ।'

इत्यवधार्य कच्छपं भूतले प्रक्षिप्य मृगमुपा-द्रवत्। एतस्मिन्नन्तरे हिरण्यकेन वज्रोपमदंष्ट्राप्रह-रणेन तद्दर्भवेष्टनं खण्डशः कृतम्। मन्थरकोऽपि तृणमध्यान्निष्क्रम्य समीपवर्तिनं पल्वलं प्रविष्टः। चित्राङ्गोऽप्यप्राप्तस्यापि तस्य तत उत्थाय वायसेन सह पलायितः।

ऐसा निश्चय करके वह कछुएको जमीनमें फेंककर मृग की ओर दौड़ पड़ा। इसी बीच हिरण्यकने अपने वज्र सरीखे दाँतों के प्रहारसे उस कुशके जालको काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। मन्थरक भी तृणोंके मध्यसे निकलकर पासवाले तालाबमें

१-सावशेषं स्वल्पावशिष्टं जीवितं यस्य सः, मरणासन्न इत्यर्थः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कूद गया और चित्राङ्ग भी व्याधके पहुँचनेके पहले ही उठकर कौएके साथ भाग गया।

एतस्मिन्नन्तरे विलक्षो विषादपरो लुब्धको निवृत्तो यावत्पश्यति, तावत्कच्छपोऽपि गतः। ततश्च तत्रोपविश्येमं श्लोकमपठत्—

इसी बीच व्याधा आश्चर्य एवं खेदके साथ लौटकर वहाँ ज्योंही देखता है, त्योंही कछुआ भी गायब है। इसके बाद वहीं बैठकर उसने यह श्लोक पढ़ा—

'प्राप्तो बन्धनमप्ययं गुरुमृगस्तावत्त्वया मे हृतः
संप्राप्तः कमठः स चापि नियतं नष्टस्तवादेशतः।
क्षुत्क्षामोऽत्रवने भ्रमामि शिशुकैस्त्यक्तः समंभार्यया
यच्चान्यन्न कृतं कृतान्त! कुरुते तच्चापि सह्यं मया।

हे दुर्दैव! बन्धनमें पड़ा हुआ भी यह बड़ा हरिण तुमने हरण कर लिया, मेरा प्राप्त कछुआ भी तुम्हारी आज्ञा से ही निश्चय नष्ट हुआ। पुत्र-कलत्रसे रहित होकर क्षुधा-पीड़ित मैं इस जंगलमें घूम रहा हूँ। अतः अरे विधाता! तूने और जो कुछ अनिष्ट नहीं किया, वह भी करले, मुझे सब सह्य है ॥ १९८ ॥ 'शार्दूलविक्रीड़ित'।

एवं बहुविधं विलप्य स्वगृहं गतः। अथ तस्मिन्व्याधे दूरतरं गते सर्वेऽपि काककूर्मसृग-मूषिकाः परमानन्दभाजः परस्परमालिङ्ग्य पुनर्जात-मिवात्मानं मन्यमानास्तदेव सरः सम्प्राप्य महासुखेन सुभाषितकथागोष्ठीविनोदेन कालं नयन्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्म । एवं ज्ञात्वा विवेकिना मित्रसंग्रहः कार्यः । न च मित्रेण सह व्याजेन वर्तितव्यमिति । उक्तञ्च यतः—

इस प्रकार करुण-क्रन्दन (रोदनं) करके वह (व्याधा) अपने घर चला गया । तत्पश्चात् उसके दूर चले जानेपर वे सब कौए, कछुए, हरिण और चूहे—आदि परम आनन्दके अधिकारी होकर आपसमें प्रेमालिङ्गन करते हुए, अपना पुनर्जन्म समझकर, उसी तालाबमें पहुँचे और सुन्दर २ कथा-प्रसंगके विनोदसे सुखपूर्वक समय बिताने लगे । ऐसा जान कर चतुर मनुष्यको 'मित्र' बनाना चाहिये और मित्रके साथ कभी छल-कपटसे व्यवहार न करना चाहिये । क्योंकि कहा भी है—

यो मित्राणि करोत्यत्र न कौटिल्येन वर्तते ।
तैः समं न पराभूतिं सम्प्राप्नोति कथञ्चन ॥१६६॥

इस संसारमें जो मित्रता करता है और छल-प्रपंच से व्यवहार नहीं करता, वह उन मित्रोंके साथ रहकर किसी प्रकार भी शत्रुओंसे पराजित नहीं होता ॥ १६६ ॥

इति श्रीविष्णुशर्मविरचिते पञ्चतन्त्रे मित्रसम्प्राप्तिर्नाम द्वितीयं तन्त्रं समाप्तम् ।

इति श्री 'द्विजेन्द्र' कवि-कृत "बालबोधिनी" भाषाटीकाऽलङ्कृते श्रीविष्णुशर्मविरचिते पञ्चतन्त्रे मित्रसम्प्राप्तिर्नाम द्वितीयं तन्त्रं समाप्तम् ।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, बुलानाला बनारस सिटी ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक ग्रन्थों के लेखक, टीका–टिप्पणीकार एवं सम्पा
"कविता-कलानिधि, साहित्यरत्न, काव्य तीर्थ"
पं० श्रीसरयूप्रसादशास्त्री 'द्विजेन्द्र' कृत
'बालबोधिनी' टीका सहित–

पञ्चतन्त्रम्

मनुष्य स्वभावतः कथाप्रिय होता है। यदि मनोरंजन के साथ उस कथा में नैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक उपदेशों का पुट हो तो फिर क्या कहना है? यह पंचतंत्र वैसी ही तंत्राख्यायिकाओं में से एक है–जिसका संकलन राजनीति के मर्मज्ञ विद्वान पं० विष्णु शर्मा ने संस्कृत वाणी में बड़ी निपुणता से किया है। इसमें कुल पाँच प्रकरण हैं– (१) मित्रभेद, (२) मित्र-सम्प्राप्ति, (३) काकोलूकीय, (४) लब्धप्रणाश और (५) अपरीक्षित-कारक।

इसकी लेखनशैली बड़ी सुन्दर एवं विनोदपूर्ण है। इसपर प्रायः सभी भाषाओं में टीकाएँ भी होचुकी हैं; क्योंकि सर्वत्र शिक्षासंस्थाओं ने इसे पाठ्य ग्रन्थ मानलिया है। इसीलिये हमने यह परिशोधित सँस्करण पाठकों के सन्मुख रक्खा है।

कविवर श्री 'द्विजेन्द्रजी' ने "बालबोधिनी" हिन्दी-टीका के साथ साथ जिज्ञासु छात्रों के लिये समुचित टिप्पणियों से और भी इसे उपादेय बना दिया है। पुस्तकालय एवं पुरस्कार के लिये तो यह एक अनुपम वस्तु है। मूल्य केवल लागत मात्र ६) रखा गया है।

पुस्तक-प्राप्तिस्थान–
फर्म–बाबू बैजनाथ प्रसाद
बुकसेलर
राजादरवाजा, वाराणसी।

विनीत प्रार्थी–
गोपालदास बुकसेलर,
काशी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri